THE BOOK WAS DRENCHED

TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_176869
UNIVERSAL LIBRARY

जीवन की झाँकी

(एक शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास)

लेखक

श्री खड्ग सिंह 'हिमकर' 'विशारद'

भगवन्! तव माया-छाया में, पाया किसने काया!
तव यश गाया सतत भरमाया, आया साया ही साया!

प्रथम बार १०००] नवम्बर १६५० [मूल्य एक रुपया

प्रकाशक
लम्मन बुक डिपो
स्टेशन रोड, पटना जंकशन

मूल्य एक रुपया

मुद्रक
देवव्रत
नवशक्ति प्रेस, पटना

दो शब्द

पाठकगण! शारदा के मन्दिर में पुष्प और फूल लेकर अर्चना-अभ्यर्थनार्थ पट खटखटाना तो मानव का एकमात्र कर्त्तव्य एवं परम धर्म है। चाहे वे ठुकरा दें या अपनावें। इसके मानापमान और फलाफल का कोई स्थान ही नहीं। हाँ तो, इसी ध्येय को अपने विदीर्ण हृदय-कोण में तुच्छ स्थान देकर, आपलोगों के सम्मुख मैंने भी आने की हिम्मत बाँधी है।

अच्छा तो, आज को विकट स्थिति, संकटपूर्ण एवम् उलझनपूर्ण देश की आर्थिक परिस्थिति, दयनीय, शोचनीय और हृदयतल को दहला देनेवाली सामाजिक आधि-व्याधि क्यों युग-युगान्तर से लोकापवाद और जनश्रुति के अन्धविश्वास-जल से चिर-स्रावित और चिर-संचित असाध्य रोग से किसी का साध्य होना सुसाध्य नहीं, किं बहुना? परन्तु ऐसी दशा में साहस-च्युत होना क्या लाभप्रद है? कदापि नहीं। जीवन और विशेषतः मनुष्य-जीवन तो संघर्षमय है ही। फिर भी पीछे क्यों।

वाचकवृन्द! प्रस्तुत पुस्तक के विषय में मैं क्या कहूँ क्या न कहूँ। इसके लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन-काल में तो निरन्तर अश्रान्त और अविरल प्राकृतिक अभिनय होते ही रहे हैं और देखें कब अन्त होंगे अथवा जीवन-पर्यन्त होते ही रहेंगे। इसमें आपलोग नित्यप्रति संघटित होनेवाली घटनावलियों का खासा चित्र देखेंगे। तज्जन्य फलाफलों का अवलोकन करेंगे। नि०

कुटिल और कुचीर उन बेचारे ग्रामीणों के, जिनकी रक्त-सींचित नींव पर आज दीवालें ही नहीं, आलीशान मकानात शोभ रहे हैं, महल और अधिक क्या प्रासादों की पंक्तियाँ पंक्तित हैं, जीवन को मरण में परिणत होते देखेंगे। विषमता, बेढबता, चापलूसी, अनाचार, ढोंग, व्यभिचार और दुराचार का अजब नजारा, खुला बाजार। आपलोगों के दग्ध हृदय से एक विचार-लहर की उद्भावना होगी जिसमें हो सकता है कि इन कुटेवों, कुकर्मों प्रभृति आधि-व्याधियों का सदा-सर्वदा के लिए होम हो जाय। किसी अन्य परिष्कर और परिष्कृत पथ के पथिक हों।

पाठकगण स्वयं ही अवगत करेंगे कि कौन सी इस पुस्तक में उपादेयता एवं विशेपता है जिन्होंने मानव-जीवन को वास्तव में जीवन बना दिया है। नहीं तो अकाल ही कितने पथ-भ्रष्ट हो काल-कराल के गाल में चले जाते। इसी में तो जीवन की सारता, मनुष्यता, धीरता, सरलता, अध्यवसायिता और कार्य को पर्यवेक्षण-शक्ति है जिसे स्वत: आपलोग देखेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन विजयावकाश के कारण शीघ्राति-शीघ्र हुआ है। अस्तु सम्भव है कि कोई त्रुटि शायद रह गई हो। एतदर्थ पाठकों से मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ। आशा है, मर्मज्ञ पाठक इस तुच्छ कृति को अपना कर परिश्रम सफल करेंगे।

निवेदक—

१ नवम्बर १९४० } खड्ग सिंह

जीवन की झांकी

१

संसार कर्म-क्षेत्र और धर्म-क्षेत्र दोनों है। यह पुण्य-पाप, सुख-दुःख, विरह-मिलन, रुदन-क्रन्दन, आमोद-प्रमोद, हर्ष-उल्लास इत्यादि युग्म वस्तुओं की क्रीड़ास्थली है। अभिलाषाएं, इच्छाएं, आकांक्षाएं और आशाओं का कारागार है, धैर्य, अध्यवसायिता, साहस, उत्साह, हिम्मत, उमंग, सुकर्म, कुकर्म, शुभाशुभ, फलाफल का आगार है। योगियों के लिए विषवत् मालूम होता है, भोगियों के लिए अमृतवत्। कर्मनिष्ठों के लिए जीवन-क्षेत्र सा प्रतीत होता है, आलसियों एवं काहिलों तथा परावलम्बी और परमुखापेक्षी के लिए असार, नीरस और गुरुतर भार। जीवन-नौका कैसे पार लगेगी। कारण खेवैया अबोध है, अनज्ञ है,

बुज़दिल है, अदूरदर्शी है और जलधार तीव्र है, भंवर उलझन-पूर्ण है, यात्रा विशेष लम्बी और कंटकाकीर्ण है। केवल यही नहीं नदी का प्रवाह उस जंगल-महाजंगल, वन-उपवन से होकर गया है जहां की विभीषिकाएं वीर-हृदय को भी कँपा देती हैं। वन्य पशुओं का शिकार ही होना एकमात्र साधन है।

हाँ तो, संसार में जितने जीव-जन्तु, चाहे वे जंगम हों या स्थावर विधना के विषम विधान से वंचित क्यों कर हो सकते? सब के सब समयानुकूल उस सत्ता के शिकार बन जाते हैं। अन्तक के सम्मुख भला किसी की दाल कब गली? सूर्य-रश्मि के सामने अंधकार का अधिकार ही क्या? समष्टिवाद की तुलना में व्यक्तिवाद की गणना ही क्या? राष्ट्रीयता में साम्प्रदायिकता का स्थान ही क्या? बस, देश को निर्बल बनाना, राष्ट्र को दुर्बल करना, अपने ही हाथ से अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना!

अनेकत्व में एकत्व की कीमत ही क्या? बहुमत में अल्पमत का स्थान ही क्या? निरा नगण्य है, क्षण-भंगुर है, अल्पकालीन है और है सर्वसम्मत से निन्दित! उत्थान के बाद पतन, सुख के बाद दु:ख, अवरोहन के बाद आरोहण, विजय के बाद हार, हार के बाद विजय, ये सबके सब इस जगतीतल पर अविरल गति से नित्य क्षण होते ही रहते हैं। घटना-चक्र का प्रवाह अनादि है, सृष्टि के अनादिकाल से घटना-चक्र आरम्भ होकर अन्तकाल तक चलता ही रहेगा। इसे रोकने के लिए न किसी में शक्ति है,

न बल है, न वीर्य है, न क्षमता है, न दक्षता है और न है कोई साधन। बहुविध घटनाएं संघटित होती रही हैं और भविष्य में भी अविश्रान्त रूप में होती रहेंगी। अस्तु, जगत् में जितनी वस्तुएं हैं वे नश्वर हैं। केवल 'सत' प्रेम, यथार्थ ज्ञान ही शाश्वत है। प्रकृति को कोई स्रष्टा कहते हैं, कोई नियन्ता कहते हैं और कोई हन्ता कहते हैं। कोई पोषक कहते हैं, कोई शोषक कहते हैं। भिन्न-भिन्न मत हैं।

अच्छा तो, वह हृदय-विदारक घटना जो संघटित हुई थी अभी भी हृदय-पटल को कम्पायमान कर देती है। उस घटना-चक्र के क्रम का मर्म आज भी एक पहेली है। शरीर के रोम-रोम को हिला देती है, जीवन को बिल्कुल निरर्थक बना डालती है, अन्धकार के सिवा और कुछ नज़र ही नहीं आता।

१६०० ई० की बात है। रमेश के पूर्वजों ने एक सुन्दर और सुयोग्य कन्या लक्ष्मी के साथ उसे ब्याह दिया था। घर सुखी-सम्पन्न था। रमेश के ससुराल वाले एक अच्छे खातहर थे। खूब साफ़-सुथरा मकान! हवा भी अच्छी वह उसकी पुष्प-वाटिका में झूला झूल लिया करती थी। वसन्त का तो मौज ही मौज था। कारण उसके मकान ही के निकट एक तालाब था जिसमें कुछ कमल भी खिले रहते थे। भँवरा का गुंजार सुनते ही बनता था। अलियों का राग अलापना मुर्दे में भी जीवन का संचार करता था। लेकिन रमेश सदा-सर्वदा से

एकान्त-प्रिय था। उसके गांववाले उसे मस्तमौला कहकर चिढ़ाया करते थे। चिढ़ाते-चिढ़ाते उसे तुनुकमिजाजी बना दिये थे। बेचारा वह तो एक साधारण स्थिति का आदमी था। वह मध्यम-वित्त का व्यक्ति था। न तो उसमें छल था, न कपट, न हाव था, न भाव, न आडम्बरी थी, न आधुनिक चाल-ढाल में ढला हुआ था। परन्तु शादी तो सभ्य समाज में हुई। अब तो उसे सभ्य बनना ही जरूरी था। नहीं तो ससुराल में क्षण भर आराम नहीं, पल-भर भी विश्राम नहीं, तिलभर भी ठहरने के लिए जगह नहीं। वजह थी कि सब के सब तंग करते थे। देखने-सुनने में भी कुहर सा मालूम होता था। परन्तु क्या किया जाय! "विधि कर लिखा को मेटनहारा।"

और, लक्ष्मी का विवाह रमेश के साथ सही-सलामत सम्पन्न हो गया था। विवाह भी पूरी उम्र में हुआ था। दोनों पति-पत्नी क़रीब-क़रीब अठारहवें वर्ष में पहुँचने को थे। अतः, वे समय की क़ीमत भी समझते थे। वक़्त से काफ़ी जानकार थे। हेर-फेर होना तो कुदरती नियम है। तब्दीलियाँ होती ही रहती हैं। कोई भी संगति से बनता है और संगति ही से बिगड़ता है। जैसा कोई बोयगा, वैसा ही काटेगा। जबतक दोनों पक्ष बराबर, तटस्थ नहीं रहते तब तक वास्तव में दाम्पत्य जीवन, जीवन नहीं मरण में परिणत हो जाता है। एक का रों-भौं दूसरे को अच्छा नहीं लगता। लेकिन दो में से कोई भी चतुर हो, दूरदर्शी हो, ज्ञानी,

हो; अनुभवी हो तो एक दूसरे को अच्छी राह पर, सुधार के रास्ते पर लाकर जिन्दगी को सफल बना सकते हैं।

अच्छा तो लक्ष्मी का खानदान अच्छा था। माँ-बाप की भली सोहबत में पला थी। कुछ-कुछ जीवन-सहचर का अनुभव भी करने लगी। वह सुशिक्षिता थी। मधुरभाषिणी थी, धीर थी, शान्त थी, और सब से बढ़कर वह गुण उसमें था जो एक पतिव्रता स्त्री के लिए चाहिए।

लोगों का प्राय: ऐसा विचार होता है कि फलाँ आदमी फलाँ जाति के हैं। उसमे यह काम नहीं होगा। अमुक वस्तु अमुक मनुष्य के लिए बनी है, दूसरे आदमी के लिए नहीं। अमुक प्राणी का तो अमुक पदार्थ जन्मसिद्ध है लेकिन यह सर्वअंश में सच्चा कभी नहीं हुआ है न हो सकेगा। जिन लोगों की ऐसी धारणा है, वे बिल्कुल गलत रास्ते पर हैं। अगर वे एसा कहते हैं तो केवल स्वार्थतावश, लोभ के वशीभूत होकर, जातीयता की दुर्गन्ध से दूषित होकर, अपनापन के भेदभाव में ओत-प्रोत होकर। किसके भाग्य में क्या है? इस घड़ी में क्या होता है? दूसरी घड़ी में क्या होने का है? किस समय क्या होगा? अतीत को जानना सुलभ है, आसान है, वर्त्तमान का जानना उससे भी सुलभ, लेकिन भविष्य को जानना तो एकदम दुष्कर है, अथाह है, अगम्य है। इन चीजों पर किसी का अधिकार जतलाना क्या है? आकाश-कुसुम तोड़ना है।

अतः रमेश तो अठारहवें वर्ष में पदार्पण कर रहा था। वैवाहिक बन्धन में भी फँस चुका था। केवल यही नहीं सांसारिक सांकल में पूर्णतया जकड़ा जा चुका था जिससे मुक्त होना, छुटकारा पाना एक पहेली थी, ऐसी-वैसी पहेली नहीं, वह पहेली जो उलझनपूर्ण थी।

दाम्पत्य प्रेम की व्याख्या करना असम्भव तो नहीं पर कठिन जरूर है। भला पति का अनादर, बेइज्जती, शिकायत, बुराई, हानि एक पत्नी सुन सकती है ? बिलकुल अनहोनी बात। उसी तरह एक स्त्री की निन्दा इत्यादि उसका पुरुष भी सुनना कभी नहीं पसन्द करेगा। रमेश बेचारा अनपढ़ था। वह तुनुक-मिजाजी था। ज़रा-ज़रा सी बात पर मार-पीट करने के लिए तयार हो जाता। उसकी दुनियाँ ही भिन्न थी, अलग थी और थी बिलकुल निराली। इस निराली में आली का समागम तो उसकी ज़िन्दगी को और भी काली बना देती ! लेकिन ऐसा नहीं हुआ। ठीक इसका विपरीत, उलटा। आज वह आली, जीवन-संगिनी, उसकी अर्धाङ्गिनी नहीं रहती तो वह कब के ही मृत्यु का शिकार होता। अकाल ही काल-कराल के गाल में चला जाता। नित्य रोज़ लोग सैकड़ों शिकायतें किया करते कि रमेश से हमलोग मज़ाक करते हैं, हंसी करते हैं, मन-बहलाते हैं लेकिन उसे दुःख मालूम होता है, बुरा लगता है। अतएव हमलोग यह अच्छा काम नहीं करते। पर दुनियाँ मानने वाली कब ?

यह तो संसार है। यहां तो अधिकतर-एक दूसरे की तकलीफ़ में, मुसीबत में, कठिनाई में, कष्ट में, विपत्ति में और झंझट में ही देख कर सुखी होते हैं। दूसरे के दु:ख के साथ दु:खी होना, आपत्ति में सहानुभूति, हमदर्दी दिखलाना तो कम लोगों ने ही सीखा है और इसमें भी विशेष कर आज के आधुनिक ढंग में ढलकते हुए लोगों के लिये तो नितान्त तमाशामात्र है। तब तो ज्ञानियों ने, ऋषियों ने, निगमानिगम, श्रुति, वेद, शास्त्र और योगियों ने सब के सब ने इस संसार को असार कह कर पुकारा है।

फिर भी बन्धन-मुक्त होना रमेश के लिये क्यों कर आसान था। उसकी जीवन-संगिनी ऐसी शिकायतों को सह नहीं सकती। वह तो वसुन्धरा पर एक केवल भोक्ता होकर नहीं आयी थी, उसमें तो उपदेशिका की अक्षय शक्ति थी। जीवन-प्रदान करने वाली संजीवनी बूटी थी। अंधकार के लिये साक्षात सूर्य-किरण थी। तो कैसे पीछे रहती। अपने पतिदेव को पढ़ना-लिखना, भले-बुरे का ज्ञान, कैसे किससे मिलना-जुलना चाहिये, किस समय कैसे रहना, उठना-बैठना चाहिये—इत्यादि चीजों, विषयों को उन्हें जानकार बनाना ही नहीं, दक्ष बनाना अपना कर्त्तव्य और धर्म समझा। कहावत है "ईश्वर उसी की मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है। अत: वह बेचारा भी मदद अपनी आप करना शुरू कर दिया। कुछ ही समय में विद्या-व्यसनी बन गया। जहां कहीं देखो हाथ में किताब ही किताब।

ठीक है—संगति से क्या नहीं हो सकता। सरस्वती देवी की कृपा हुई और कुछ ही वर्षों में एक सुशिक्षित मनुष्य बन गया। अब उसकी रहन-रहन में एक नवीनता आ गयी। आचार-विचार, चाल-ढाल, बोल-चाल, बात-चीत, सभी में एक सजीवता देख पड़ती थी। लोगों ने कहा, भाई रमेश! तुझ में ऐसा परिवर्तन क्यों? तुझ में यह शक्ति कहां से आ गयी? तेरी बोली में, आवाज़ में एक अजीब मिठास है, बुलन्द है, चेहरा-मुहरा तो भी बदला सा मालूम होता है। ऐसा कैसे और क्यों हुआ? क्या तुम मेहरबानी कर के बतला सकते हो? फिर रमेश तो रमेश ही ठहरा। उसने कहा भाई! ये सब रद्दो-बदल मेरी देवी जी की बदौलत हुए हैं। सचमुच में उसने मेरा जीवन सार्थक बना दिया। वही मैं था कि तुमलोग मेरा मज़ाक उड़ाते थे, चिढ़ाते थे, अपने को बुद्धिमान और विद्वान बतलाते थे, दुनियावी आदमी बतलाते थे, अब आओ तो मैं देखूं तुम लोगों की बुद्धि, बहादुरी, चतुराई केवल दिवाला निकाल दूंगा, दिवाला! याद रखो, सब के समय एक समान हमेशा नहीं रहता। आज जो भिखारी है, हो सकता है कि कल वही राजा हो जाए। जो अभी-अभी बादशाह बना हुआ है, वही दूसरे क्षण में दर-दर भटक सकता है, गली-गली ख़ाक छान सकता है। अब देखते हो तुमलोग, ईश्वर की लीला कितनी रहस्यमयी है। उनकी महिमा कितनी मायाविनी और और असीम है। उनकी सृष्टि कितनी संकटमय, दोष-गुणपूर्ण, ललचावनी है, उनकी इस विकट जाल-पाश से बचना मुश्किल

है। अब तो अच्छी तरह समझ सकते हो कि दूसरे को दुःख में देखकर हँसना नहीं चाहिये। तुमलोग भी उसी परमात्मा की सृष्टि के प्राणीमात्र हो जिसके अन्य। फिर भी तुमलोगों में इतनी हिमाक़त, इतनी वेवकूफ़ी, बहक का इतना दिवालापन क्यों?

तब से तो लोगों के सिर में चक्कर आने लगे। रमेश को आदर की दृष्टि से देखने लगे। जब कभी कोई बात होने की होती तो बिना उसकी राय, मंत्रणा, अनुमति के बिना नहीं करते। अब तो रमेश फूला नहीं समाता।

भगवन्! तुम्हारी गति सचमुच अगम्य है, अज्ञात है, है। अनहोनी को होनी और होनी को अनहोनी करने वाली, कटुता में मिठास और मिठास में कटुता प्रदान करने वाली है। मानव-मात्र तो क्या देवगण भी तुम्हारी गति को नहीं समझ सकते। साढ़े तीन हाथ का पुतला, एक मुखवाला, आपके हाथ का खिलौना तुम्हारी गति का वर्णन क्या करे जबकि सहस्र मुखवाले शेषनाग ने इसे 'नेति' 'नेति' कह कर छोड़ दिया, वे भी इसका पार नहीं पा सके। वेद-वेदान्तों की भी दाल नहीं गली तो सांसारिक निकृष्ट प्राणी की हस्ती ही क्या? ठीक है आप के सामने किसी का घमण्ड नहीं रह सकता, अहम्-भाव को नाश करने वाले तुम ही हो। उजड़ा हुआ घर बसाने की क्षमता तुम ही में है। राई से पर्वत, पर्वत से राई, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म करने की विलक्षणता तू ही में है तो पृथ्वीतल पर ऐसी

कौन सी चीज़ है जो इस अकाट्य नियम से अछूता बच सकती है?

हाँ, तो इसी सोच-विचार, तर्क-वितर्क, उत्तर-प्रत्युत्तर में कितने दिन बीत गए। अब तो रमेश और लक्ष्मी का दाम्पत्य जीवन सुखमय कटने लगा। वे दोनों जीवन के तथ्य को समझते थे। नाम के अनुसार अब गुण अलग अलग भी हो गए थे। भला एक रमेश ही ठहरे, उनकी धर्मपत्नी लक्ष्मी ही ठहरी जो ठीक में साक्षात् लक्ष्मी ही थी। परिवार भी एक बड़ा घराना था। गृहस्थी लम्बी चौड़ी थी, अब शिक्षा हो ही गयी थी। उसके परिवार में अब अनपढ़ कोई नहीं था। सब के सब पढ़े-लिखे थे, उनमें कई एक ने उच्च शिक्षा, तालीम भी पायी थी।

रमेश के परिवार में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले सबसे पहले उनके एक भाई थे। इनका नाम सुरेश था। रमेश का जीवन जैसी कंजूसी, और तकलीफ़ से व्यतीत हो रहा था, सुरेश का ठीक उसका उलटा। अब समय बदल चुका था। इनकी शादी तो पहले ही हो चुकी थी। ईश्वर की कृपा से स्त्री भी बहुत अच्छी मिली। दोनों का पारस्परिक प्रेम आख़िरी सीमा तक पहुँच चुका था। लेकिन संसार में भी कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो बेदाग़ है, दोष-रहित है! वह भी तो संसार-प्राणी में से एक था और इसका अपवाद भी नहीं हो सका।

आत्म-संयम की मात्रा उसमें बहुत ही कम थी। शिक्षा तो उसे मिली लेकिन पतन करने वाली शिक्षा थी। उसने ऐसी

शिक्षा प्राप्त की थी जिससे सामाजिक, राजनैतिक एवम् आध्यात्मिक पतन के सिवा और था ही क्या? उसने तो समझा था कि अब मैं पढ़-लिख कर नौकरी करूँगा। मजे से रुपये कमायेंगे। मौज करेंगे। जीवन का कौन ठिकाना। लेकिन, आखिर में परिणाम क्या हुआ? नौकरी की खोज में सवेरे निकलता था, दर-दर मारा-मारा फिरता था, कितने दफ्तर के दरवाजे जाकर ठुकराया, पर कहीं से कोई आवाज़ नहीं निकली। हाँ, जो कोई भी मिले, वह इन्हें सुना दे कि आज कल तो बेकारी की समस्या जटिल है, उलझने लायक कभी भी मालूम नहीं होती। अब तो ऐसी बात सुन कर और 'जले पर नमक छिड़कना' उसके लिए हो जाता। उसने सोचा कि ओह! जीवन बेकार है, एक बोझ है। इसका वहन करना तो मेरे लिए सर्वथा अयोग्य मालूम होता है।

उफ़! उस बुजदिल, अज्ञानी ने क्या किया? ऐसा कुत्सित काम किया जो शायद एक अनपढ़ भी हाला-हाली करने से हिचकता हो और अन्ततः कर भी नहीं सकता। उसने वही किया जो सचमुच में एक शिक्षित के लिये उचित नहीं जँचता है। असलियत में उसे शिक्षा नहीं कहते हैं। शिक्षित होते और एक साधारण कठिनाई आने पर 'आत्म-हत्या'। ओह! धिक्कार है! ऐसे भीत हृदय वालों को। शतबार लानत है ऐसे देश के कुपुत्रों को। छिः! कुल को डूबा देने वाले, बंश पर धब्बा लाने वाले ऐसे

कायर पुरुषों को असंख्य धिक्कार है। जीवन का अभिशाप है उनके लिए!

हाँ, तो और क्या? ऐसी शिक्षा से जिसमें कोई निज संस्कृति नहीं, जिसमें भले-बुरे का ज्ञान नहीं, अपने गुरुजन के प्रति लघुजन का क्या व्यवहार, माता-पिता के प्रति पुत्र-पुत्रियों का बर्ताव, व्यवहार क्या है? एक मित्र के प्रति एक मित्र का क्या कर्त्तव्य है। लोगों का क्या धर्म और कर्त्तव्य है अपने देश के प्रति मातृभूमि के प्रति, राष्ट्र के प्रति? धर्म के नाम पर जहाँ दिल्लगी उड़ाई जाती है, दो अक्षर सीख कर वेद-पुराण, निगमानिगम सब को निराधार बतलाना, श्रृंगाल के रंग में रंग जाना, दूसरे को मार्ग-च्युत करना, धोखा देना, डिंग मारना, लम्बी-चौड़ी बातें करना, ये ही सब तो विशेषताएं हैं। अफ़सोस।

बेकारी की समस्या, सभ्यता का विकास, मानवता की रक्षा, स्वतन्त्रता का पुष्टिकरण इस शिक्षा से हल होने को नहीं। जैसा कि उपर्युक्त घटना से मालूम होता है। आज सुरेश की जीवन-लीला समाप्त हो गयी। अब उसकी विधवा पत्नी पर क्या बितती होगी, भगवान ही जाने! भला, होनी के सामने कब किसकी चली है!

हाँ, तो रमेश भी तो यथार्थ में रमेश ही था। और लक्ष्मी को तो पाकर और उसमें चार चाँद लग गए थे। जिस तरह से फूल में सुगन्ध की ही प्रधानता दी जाती है उसी प्रकार से कुल

में. वंश में एक सुपुत्र का ही श्रेय माना जाता है। रमेश अब उन्हीं में से एक था। इसकी जीवन-सहचरी तो सोना में मानों सुगन्ध ही थी। अतः अपनी विधवा भाभी की देख-रेख खूब अच्छी तरह इसने की।

जहाँ तक बन सका उसे सुखी, खुशमिज़ाज रखने के लिए यथाशक्ति बाज नहीं आया।

इसकी गोतनी लक्ष्मी तो लक्ष्मी ही ठहरी। वह तो समझती थी कि दुनियाँ नश्वर है। उसे तो शिक्षा मिली थी जो दरहक़ीक़त में शिक्षा थी। उसने एक दिन अपनी गोतनी को अधिक चिन्तित और खिन्न देख कर कहा, क्या करोगी? जगत् की यही रीति है। यहाँ पर कोई भी स्थायी रूप से रहने के लिए नहीं आया है। हम, तुम, वह, संसार में जितने जीव-जन्तु, जंगम-स्थावर, जलचर, थलचर, नभचर, इत्यादि हैं सब के सब किसी न किसी दिन दूसरे लोक के लिए रवाना हो जायेंगे। यही तो संसार की रीति है, यही तो प्रकृति का नियम है। किसी का वश उस प्रकृति देवी के सामने नहीं चलता। इसमें हमारी, तुम्हारी, अथवा दुनियाँ की हस्ती ही क्या? अतएव अधीर मत हो। जीवन-नइया को जैसे चले चलने दे। तरह-तरह के वतास आएँगे, अंधड़ और तूफान आयेंगे। लालच, लोभ, तृष्णा एवं मन हिला देने वाले दृश्य आते रहेंगे। तो क्या तुमको इन सबों से विचलित हो जाना चाहिए। नहीं, कभी भी नहीं।

इसी तरह दिन कटने लगे। कितने हेमन्त आए और चले गए। वसन्त अपनी वासन्ती छटा दिखला कर चला गया। कितने अलिगण, भ्रमर कलियों की खोज में आए और रस-चूँस कर उड़ भी गए। नित्य रोज़ नये नये दृश्य और वाकयात भी आँखों से गुजरते गए। सचमुच आनन्द की घड़ियाँ मालूम होती हैं कि तुरत ही बीत जाती हैं। लेकिन दुःख की घड़ियों की तो अवधि ही नहीं मालूम होती। विपत्ति मानव-हृदय को कमज़ोर बना देती है। जर्जर कर देती है। यह तो असाध्य रोग है जिसके लिए कभी-कभी दवा भी मिलना दुश्वार हो जाता है और असमय ही में लहलही और डहडही जीवनलता को रौंद डालती, खात्मा कर देती है। सुरेश की मृत्यु वास्तव में एक ऐसी चोट थी जिससे उसके परिवार का हृदय टूटता सा मालूम होता था। उसमें एक दाग़ पड़ गया था जो अमिट था। उसमें फफोले पड़ गये थे जिसमें हमेशा जलन थी। उसमें एक टीस थी, एक असह्यनीय पीड़ा थी। लेकिन उपाय ही क्या? कोई ऐसी औषधि नहीं कि उसे नीरोग बना सकती। पर जीवन तो ज्यों-त्यों करके बिताना ही पड़ता।

खैर, इसी तरह पशोपेश में समय बीतने लगे। कालक्रम से सौभागिनी, वीरेन्द्र, दुखिनी, धीरेन्द्र, कर्मेन्द्र, और सुखिया नामक रमेश को छः सन्तानें हुईं। सब भाई-बहनों में बहुत ही मेल-मिलाप रहता था। उन लोगों में स्नेह इतना अधिक था कि बिना एक दूसरे के रह नहीं सकते थे। चूंकि माता-पिता दोनों

के दोनों शिक्षित ठहरे। खानदान भी अच्छा ही था। सुखी-सम्पन्न भी थे ही। इसलिए सन्तानों का लालन-पालन भरण-पोषण भली भाँति करते थे। गाँव में स्कूल भी था। अतएव लड़कों और लड़कियों को पढ़ाना-लिखाना भी यथोचित समझे। सौभागिनी दुखिनी और दुखिया ने साधारण तौर से शिक्षा पायी थी। केवल चिट्ठी-पत्री लिख लिया करती थीं। साधरणतया हर-हिसाब भी लगा लिया करती थीं।

लेकिन इनमें से एक सुखिया की प्रतिभा विचित्र-सी मालूम होती थी। इसमें एक दैविक आभा-सी मालूम होती थी। स्मरण-शक्ति भी बहुत तीव्र थी। खूब स्वस्थ। आँख भी ऐसी थीं जो कि एक सुनामनी और सुलक्षणा महिला के लिए चाहिए, योग्य है। इसकी शरीर-आकृति साधारण। न अधिक मोटी, न अधिक पतली, न अधिक लम्बी न अधिक नाटी। एक वाक्य में कहूँ तो कह सकता हूँ कि माध्यम श्रेणी की आकृति थी। चेहरा गोरांग, बाल भी खूब काले-काले थे। लड़कपन ही से अच्छापन, भोलापन, सीधापन और साधुता टपकती थी। जो कोई देखते थे सब के सब कहते थे कि रमेश भाई, तेरी सुखिया तो सचमुच में 'सुखिया' ही है। सब का मन उसको देख कर खुश हो जाता था। अस्तु।

अक्सर यह बात देखी जाती है कि गुण का आदर सब कोई करते हैं। इसमें संकीर्णता का स्थान नहीं। साम्प्रदायिकता की भी

टांग उखड़ जाती है। गुण के ग्राहक सब कोई होते हैं। और जिसमें गुण और रूप दोनों हैं तब तो बात ही क्या? उसके लिये तो सोलह आना पाव रत्ती है, "उसकी पाँचों अंगुलियां घी में हैं। सुखिया भी इसी श्रेणी की थी। बाल्यावस्था में एक आकर्षण होता है, एक लुभावन होता है, एक मिठास होती है, एक जादू होता है जो हठात् सबको अपनी ओर खींचने की कोशिश करते हैं। सुखिया के प्रति तो लोगों का स्नेह था ही। सब तरह से इसे उन्नत हालत में देखना चाहते थे। इस वजह से इसका शिक्षण जारी रहा। होनहार का तो प्रत्येक लक्षण बालकपन ही से नजर आता है। मेहनत करने में सुखिया भी अव्वल दर्जे की थी। कालक्रम से सुखिया ने अपर-परीक्षा पास की। और छट्ठे वर्ग में उसका नाम लिखवा दिया गया। केवल हिन्दी ही नहीं अब इंगलिश भी पढ़ने की जरूरत थी।

अच्छा, बात भी सही है कि नयी चीज को जानने के लिए हृदय में एक तड़पन होता है। एक अजब तरह की लहर होती है। जिसकी गति बहुत ही तीव्र और टेढ़ी-मेढ़ी होती है। उस वस्तु के लिए एक इतनी मजबूत ख्वाहिश होती है कि कैसे चट-पट सीख लें। कैसे बने कि थोड़े ही समय में फलाँ चीज जान लें। यह भावना उस बेचारी सुखिया के मन में उठ रही थी। इसकी जड़ बहुत ही मजबूत हो रही थी।

अंगरेजी उसके लिए बिल्कुल एक नयी चीज थी। उसने

एक जीवन का वरदान समझा। दूगुने उत्साह, चाव और मेहनत से पढ़ने लगी। और अपनी तीक्ष्ण बुद्धि की बदौलत कुछ ही समय में अंगरेजी भी अच्छी पढ़ने-लिखने लगी। सचमुच में वह एक बालिका थी, एक महिला थी और आशा की जाती थी कि वह एक दिन देश और समाज का सिर ऊंचा करेगी।

परन्तु क्या उसे सफलता मिल सकी? सातवाँ क्लास पास कर चुकी। मिडल-परीक्षा समाप्त हो चुकी। उसकी ज़िन्दगी और सुखमय और शानदार होने को थी लेकिन काश, हो नहीं सकी। उन दुष्टों के षड्यंत्र-पाश में वह पहले फँस चुकी थी। गृद्ध-दृष्टि से वह अब तक वंचित नहीं रह सकी थी। भीतर ही भीतर एक आग सुलग रही थी और हो सकता था कि चिनगारियां यदि नहीं छिटकतीं तो किसी को मालूम भी नहीं होता कि इस संसार ही को भीतर ही भीतर सदा-सर्वदा के लिए जला कर खाक कर डालती। उस समाज की तो गणना ही क्या?

इस संसार में कुचालियों की कमी नहीं, चापलूसों का अभाव नहीं। कहलाने के लिए तो शिक्षक होते हैं, उपदेशक बनते हैं, गुरु बनते हैं और अपने को समाज की कामना करने वाले जतलाते हैं, लेकिन मैं तो कहता हूँ कि ऐसा ढोंग क्यों? ऐसा धूंधलापन क्यों? ऐसी धांधली क्यों? ऐसा अन्याय क्यों? ऐसी चाटुकारी क्यों? ऐसी चापलूसी क्यों? जबकि

शिक्षा का अर्थ खुद ही नहीं समझते और शिक्षक कहलाने लगे। उपदेश क्या है, यह बात तो स्वयं समझते ही नहीं और उपदेशक कहलाने का दावा। निराधारा ऐसे ही धोखेवाजों से घर का नाश होता है। ऐसी दुष्ट प्रकृति वाले व्यक्तियों और ढोंगियों से समाज का पतन होता है, धर्म का ह्रास होता है और अन्ततः राष्ट्र का सर्वनाश !

वह लता जिसमें हरियाली थी, जिसमें डहडही थी, जिसमें सुकुमारता थी, जिसमें कोमलता थी आज सहसा रौंद दी गयी। आज उसका मूलोच्छेद हो गया ! इसी तक विषाक्त वातावरण सीमित नहीं रहा। यह तो अविरल गति से चारों तरफ़ फैल गया। जहां कहीं इसकी बू पहुँचती, दूषित ही दूषित बना डालती थी। चारों ओर से छिः छिः की आवाज़ आती। अब सुखिया तो मिट्टी सी हो गयी। उसके माँ-बाप ऐसे पशोपेश मे पड़े, ऐसी परिस्थिति में पहुँच गये कि जीवन-भार सा मालूम होने लगा। कारण सामाजिक बन्धन !

दैवात् मोहन एक बहुत ही पहुँचा हुआ विचार का आदमी था। उसने दुनियाँ की चालों को अच्छी तरह देख लिया था। तरह-तरह के मनुष्यों के स्पर्श में आ चुका था। वस्तुस्थिति को अच्छी तरह समझता था। परम्परागत रीति-रिवाज़ का अनुयायी नहीं था। इसका अर्थ यही नहीं कि वेद-वेदान्तों का खण्डन-मण्डन करता था। हाँ, बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनमें अत्युक्ति प्रतीत

होती है। व्याजस्तुति का समावेश पाया जाता है। आँख मूंद कर उन बातों का अनुसरण करने वाला नहीं था। जो उसे तर्क-वितर्क द्वारा प्रमाणित होता था उसको सहर्ष स्वीकार कर लेता। उसने तो जीवन के उत्थान और पतन देखा था। सब जगह खामोशी थी। बिल्कुल सन्नाटा, एक सन्नाटा। मोहन को यह ख़बर कानों-कान पहले ही मिल चुकी थी। वह तो दुष्टों की चाल से पहले ही से वाक़िफ था। अन्त में बल से, बुद्धि से, अपने विलक्षण तार्किक विवेक से उस दूषित और विषैली ख़बर को दबा दिया लेकिन उसकी दुर्गन्धी नहीं गई थी और भीतर ही भीतर घर भी कर रही थी। जिसकी दीवाल की कोई सीमा ही नहीं मालूम होती। परन्तु मोहन कब चुकने वाला। इसके पीछे वह तो साग-सतुआ लेकर पड़ गया। ख़ूबी तो यह कि घर से बाहर इस दूषित ख़बर को बढ़ने नहीं दिया।

हाँ, अब सौभागिनी और दुखिनी की हालत सुनिये। उपर्युक्त घटना-चक्र का प्रवाह तो द्रुतगति से बढ़ ही रहा था। रमेश और लक्ष्मी हमेशा इस सोच-विचार में डूबे रहते कि अब तो कुल बुड़ने पर है। पढ़ाना-लिखाना लोग अच्छा समझते हैं लेकिन हमलोग तो नहीं जानते थे कि ऐसे कुचक्र में पड़ेंगे। आज सुखिया नाशी हो गई। सुखिया ही क्यों? आज हमलोग विनाश की ओर अग्रमुख हैं और हमारा परिवार तथा समाज, अगर यह ख़बर फैलती ही गयी तो सदा के लिये बदनाम हो

जायेंगे। केवल यही नहीं इसे पृथ्वी पर एक कलङ्क का टीका रह जायगी जो जन्म-जन्मान्तर शूल का काम करती रहेगी। अतः ऐसी हालत में अच्छा होता कि तीनों लड़कियों की शादी कहीं ठीक कर दी जाय।

लड़के की तलाश होने लगी, लेकिन याद रहे कि ये बातें औरों के कान में नहीं पहुँची थीं। कठिन मेहनत के बाद वर ठीक-ठाक हो गए। पर दो ही का। सुखिया का ठीक नहीं हुआ। चट-पट शादी का इन्तज़ाम हुआ और सही-सलामत खुशी ब खुशी पार लग गई। सौभागिनी और दुखिना का व्याह हो गया। अपने अपने घर चली गईं।

बेचारी सुखिया तो यों ही रह गयी। मक्कारियों की फिर बन आयी। उन लोगों ने रमेश और लक्ष्मी से कहा कि अभी कोई हर्ज नहीं है इसकी शादी दूसरे वर्ष में कर दी जाए। रमेश और लक्ष्मी अब करते तो क्या करते? लड़के की खोज में उन लोगों ने तो आकाश-पाताल एक कर डाला लेकिन अंध-विश्वासी और रूढ़िवादियों के सामने उनकी एक भी न चली। कहीं तो लड़का छोटा मिलता था तो कहीं बड़ा। कहीं पर राशि-गणना ही ठीक नहीं होती। अब क्या होता?

खैर, धीरे-धीरे लग्न का समय भी घसक चुका। अब तो छाती-पत्थल देकर दूसरे वर्ष के लिए स्थगित रखना ही पड़ा। चिन्ता से उन लोगों के शरीर क्षीण होते जा रहे थे। ऐसा बोझ

उनके सिर पर आ पड़ा था कि ज़िन्दगी को बेकार बना रहा था लेकिन लाचारी थी। यह बात तो उनके हाथ की थी नहीं। क्योंकि वे लोग भी इसी संसार में थे। उन्हें भी नाता-कुटुम्ब से सरोकार था। सामाजिक बन्धन भी उनसे अछूता नहीं था। अब वे लोग दो बन्धनों के बीच में थे। एक लौकिक, दूसरा पारलौकिक। वे ऐसी हालत में सामाजिक बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते न धार्मिक बन्धन की अवहेलना ही करते।

सचमुच, ऐसी दशा में मनुष्य क्या से क्या न कर दे। लेकिन वे लोग तो इस दुनियाँ से वाक़िफ थे। परन्तु अब दूसरा उपाय ही क्या था। जैसे-तैसे करके दिन बिताने लगे। अब उन पति-पत्नी का अरमान, लालसा तो केवल सुखिया के विवाह ही में केन्द्रित हो रही थी। खैर, रमेश और लक्ष्मी ने आपस में बात-चीत की कि अब चारा ही क्या। ईश्वर जो करता है सो अपने जानते अच्छा ही करता है लेकिन एक बात, हम लोग सुखिया के लिये इसी समय से लड़के खोजने में अपनी सारी ताक़त लगा दें कि दूसरे वर्ष में शादी बिना रोक-टोक हो जाए। अच्छा तो पूरी रफ़्तार से काम भी होने लगा।

२

पाठकवृन्द ! आपलोग सुखिया की दयनीय और शोचनीय दशा से अच्छी तरह परिचित हैं। वास्तव में वह अभागिनी सुखिया ऐसी करूणापूर्ण हालत में थी कि समाज के रोम-रोम को कँपा देती है। उसके परिवार की बात और विशेष क्या ? सोच-फ़िक्र और शर्म के मारे रात खाते तो दिन उपवास दिन खाते तो रात उपवास। इन सब बातों को लेकर सुखिया और उसके परिवार का जीवन बोझ हो रहा था लेकिन क्या वे आत्म-हत्या कर लेते ? नहीं, नहीं, यह तो जीवन में सबसे कड़ी परीक्षा है और ऐसी ही हालत में तो मनुष्य की मानवता देखी जाती है। आत्म-हत्या करना तो बुजदिली है, हृदय की कमजोरी है, पाशविकता है, नीचता है और है सब तरह से निन्दा के योग्य।

"होनी होई सो होकर रही"। अतः महानुभाव धर्मेन्द्र एक सुखी

और सभ्य जमींदार थे लेकिन कृषक कहना ही अत्युत्तम और उचित होगा। वह जमींदार महोदय साढ़े छः फीट का छरहरा जवान! उनकी चमकती हुई आंखें, दमकती हुई नसें, ऊँचा ललाट, चौड़ी और उभरती हुई छाती, लम्बी और वलिष्ठ बाजुओं, बाहुओं से एक विचित्र प्रकार की आभा निकल रही थी। उनमें एक रौनक, एक चमक, एक दमक। फलतः जो कोई उनके स्पर्श में, समागम में आते बलात् उनकी ओर खींच जाते। भला, जब वे खुद ही सर्व-गुण-सम्पन्न थे तो उनके आत्मज, संतान, बालबच्चे पीछे क्यों रहते। विशेष रूप से यह बात देखी जाती है कि बाल-बच्चे पर पूर्णतया छाप माता-पिता की ही पड़ती है। और ऐसा होना भी स्वाभाविक ही है।

हाँ, तो ये कृषक महोदय सुखी, धनी, और ऐश्वर्यशाली तथा भाग्यशाली के सिवाय हमेशा प्रसन्नचित्त वाले थे। इनकी मुख-मुद्रा पर निराशा एवं ह्रास इत्यादि के चिन्ह कभी भी नजर नहीं आते। तो क्यों न कहें कि सफलता ऐसे मनुष्य के आगे बत्तीसों घड़ी हाथ जोड़े खड़ी रहती। घर धनी था ही। इनके कुल-परिवार सब के सब शुभेच्छुक एवं परोपकारी थे। इनको ससुराली तरका भी मिला था। ससुराल वाले और भी सभ्यता एवं शिक्षा में मैदान मारे हुए थे। इस पर भी सास-श्वसुर की कृपा-दृष्टि धर्मेन्द्र जी के प्रति एक खासा स्थान रखती थी। ऐसी हालत में अब पूछना ही क्या। इसी को कहते हैं "सितारा चमकना"।

खैर, कालक्रम से इनको पाँच सन्तानें हुईं। इनका नाम सुशीला, कुन्तला, गजेन्द्र, महेन्द्र और करुणेश था। जब लक्ष्मी का वास ही था, सरस्वती का निवास था, बन्धु-बान्धवों का सहवास था और जीवन-संगिनी का विश्वास था तो ये धर्मेन्द्र बाबू पीछे क्यों रहते? इन्होंने तो जीवन में उत्थान का ही पाठ पढ़ा था। भला वीसवीं सदी के मनुष्य उसमें भी शिक्षित, मौजूदा हालत से भली भांति वाकिफ़। अन्ततः पाँचों सन्तानों की शिक्षा-दीक्षा, देख-रेख भरण-पोषण, रहन-सहन की निगरानी खूब अच्छी तरह करने लगे। समयानुकूल वातावरण भी था। सबके सब तेजस्वी, प्रतिभाशाली और शान्तिप्रिय मालूम होते थे। यथार्थ में बात भी ऐसी ही निकली। ईश्वर की कृपा से ही ऐसा परिवार मिलता है।

शिक्षा-दीक्षा में पूर्णतया सब सफल हुए। लेकिन सबसे छोटा पुत्र करुणेश की आभा कुछ और ही आभासित होती थी। उसमें मालूम होता था कि एक विचित्र प्रभा है जिसके द्वारा कभी परिवार को ही नहीं समाज एवं देश को प्रभावित कर ही कर छोड़ेगा। उसका लिलार ऊँचा था। त्रिशूल की रेखा सो अंकित एक सांकेतिक मात्र था। रूप-रंग, आकृति-प्रकृति, संग-सोहबत सबसे साफ़ यही बात जाहिर होती थी कि वह किसी का उद्धार अवश्यमेव करेगा। कहावत भी है कि 'होनहार विरवान के होत हैं चिकने पात'। इस लोकोक्ति का अक्षर-अक्षर इस करुणेश के प्रति घट रहा था।

अब सुशीला, कुन्तला, गजेन्द्र और महेन्द्र संसार-क्षेत्र में आ गये थे। अवस्थानुकूल उन लोगों का व्याह भी हो गया और पूरी तरह अपने काम-काज में फँस भी गये। गजेन्द्र और महेन्द्र को सांसारिक चिन्ता कम सताती थी। कारण अभी तो वे लोग पिता-माता के कमाए हुए धन पर गर्व करते थे, मौज और गुलछर्रे उड़ाते थे। अभी तक बिल्कुल बेफ़िक्र थे।

संयोग से सुशीला और कुन्तला को घर-वर भी अच्छे मिले और मिले क्या ऐसे वैसे ? इच्छानुकूल, मनमाफ़िक़। इसी को कहते हैं वास्तविक विवाह, दाम्पत्य-जीवन का आनन्द और लुत्फ़। सचमुच धन के अभाव में मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। इसके बिना गति आबद्ध हो जाती है, रफ़्तार रुक जाती है। चमकते हुए सितारे को भी नतमस्तक होना पड़ता है, दरिद्रता की मार से पनपना कोई आसान काम नहीं। इससे उबरना, मुक्त होना, क्या है, "लोहे का चना चबाना है" लेकिन क्या किया जाय !

तो करुणेश की प्रतिभा निराली थी। उसका सितारा का स्थान ही अपनी अलग शान रखता था। वह तो दया, करुणा की साक्षात् मूर्त्ति था। जैसा कि नाम से प्रकट होता है। किसी को दुःख में पड़े देख उसका हृदय दहल जाता, दया से द्रवीभूत हो जाता और हृदयतल से एक तरह की लहर उठती कि कैसे मैं उसे दुःख से निपटाऊँ, उबारूँ।

ऐसा भाव उनके अन्तस्थल में सदा से ही विराजमान था। वह करुणेश तो मानव-समाज के कल्याण और उपकार के हेतु इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ था। उसकी बुद्धि, विवेक-शक्ति, तर्क-वितर्क की शक्ति तो विचित्र थी। एक ही बार और एक ही समय में अनेक कार्य ऐसी दक्षता और चतुराई से कर देते कि लोग देख कर दंग रह जाते। दैविक शक्ति की करामात ही ऐसी है। शिक्षा तो आखिरी हो चुकी थी। इनको लाड़-प्यार भी सब अपने भाई-बहनों की अपेक्षा अधिक होता था।

अब इनके ब्याह की भी बात-चीत चलने लगी। इधर-उधर लड़की की खोज होने लगी। रातों-दिन नाई-ब्राह्मण इसके पीछे पड़े रहे। लेकिन हो तो क्या? यह बात करुणेश को मालूम हो गई कि मेरे विवाह के पीछे सब परेशान हो रहे हैं, दिन-रात जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। उसने मन में सोचा कि क्या वैवाहिक-बन्धन में पड़ना मेरे लिए उचित है?

तत्पश्चात् वह सोचने लगा कि ओह! वर्त्तमान समय का विवाह क्या है? एक अटूट जंजीर, इसकी हरेक कड़ी काँटेदार और उलझनभरी है। वजह साफ़ है। न तो लड़के का कुछ अधिकार है पत्नीवरण करने में, न लड़की का हक़ है। पति-वरण करने में। वे तो लड़के-लड़कियों के अभिभावकों द्वारा सौदा के रूप में ठीक किये जाते हैं। चाहे लड़की अँधी हो, कुरूप हो, बदसूरत हो, लंगड़ी हो, बहरी तो इससे लड़के

का सम्बन्ध क्या? यही बात लड़के के साथ भी अक्षरशः संघटित होती है, लागू होती है। ऐसी वितण्डता, ऐसी कुर्बानी, ऐसा अंधविश्वास, ऐसा रूढ़िवादी का दिवालापन!

तो फिर विवाह, विवाह क्यों रहे। करुणेश को इसका पूरा अनुभव हो गया था। उसने अधिकतर अनुभव तो पुस्तकों से प्राप्त किया था। कुछ अनुभव दुनियाँ को हिला देनेवाली घटनाओं से मिले थे, कुछ अनुभव नित्य नवीन हृदय कँपा देने वाले वाक़यात से हासिल किये थे। तो फिर वे इस झंझट में क्यों कर फँसते, इस मृग-तृष्णा के पीछे क्यों दौड़-धूप लगाते; इस उलझन-पाश में क्यों कर उलझते? उनका मन काँप जाता था, उनकी आत्मा सहम जाती थी। उनके रोंगटे खड़े हो जाते थे। उनके दिल में विदग्धता उत्पन्न हो जाती। एक क्षोभ पैदा हो जाता। उनका सिर अकस्मात् ठनक पड़ता और एक ठण्ढी साँस लेकर कहा करते कि भगवन्! ऐसी सामाजिक विशृं-खलता क्यों?

करुणेश का हृदय तो उदार था, कोमल था जिसमें एक प्रस्फुटित और स्पष्टरूप से करुणा ही करुणा का साम्राज्य था, निवास था। वे तो सभ्य और सुशिक्षित थे। अतः उन्होंने अभिभावकों के विचार का खण्डन-मण्डन किया। कहा कि लड़के-लड़कियों की शादी में अभिभावकों की ऐसी ज़बरदस्त हस्ती? ऐसी बात तो हमसे कदापि नहीं हो सकती। मैं तो

कहता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ कि स्त्री, केवल भोग्यवस्तु नहीं, इसका कर्त्तव्य केवल जनन ही नहीं है जैसा कि आधुनिक अपने को सभ्य कहलाने वाले भद्र पुरुषों की धारणा हो गयी है। उसका स्थान तो पुरुषों से एक गुणा नहीं, दो गुणा नहीं, अनगिनत गुणा बड़ा और उच्च है जिसकी समता और क़ीमत क्या हो सकती।

करूणेश के माता-पिता के कानों में ये बातें पहुँच गयीं। वे लोग भी तो कोई अनज्ञ, अनभिज्ञ और पुरातन के पक्षपाती नहीं थे। उन लोगों ने अच्छी तरह दुनियाँ की हालत देखी थी। एक नयी और सजीव रोशनी में पले थे। नवीनता के समर्थक थे। लेकिन कमी क्या थी? वे लोग अब तक पुरातन के पुजारी थे। सामाजिक बन्धनों से पूर्णतया सम्बद्ध। भाई-कुटुम्ब का एक तरफ़ डर था तो दूसरी तरफ़ पुत्र-स्नेह का जोर था, प्राबल्य था।

एक बात देखी जाती है कि धनिकों को साधारण जन हालांकि दोषी प्रमाणित होते हुए भी निर्दोष साबित करता है। धन का प्रभाव ही ऐसा है। सच है कि 'प्रभुता पाहि काहि मद-नाहीं।' धर्मेन्द्र ने क्या किया? कौटुम्बिक बन्धनों की अवहेलना करना चाहा और चाहा कि संसार की जर्जरित परम्परागत रीति-रिवाज़, रहन-सहन, रूढ़िवाद और जड़ता में एक उथल-पुथल मचा दूँ, एक क्रान्ति ला दूँ! देखूँ हमारे प्रति किसकी हिम्मत होती है। हम अपने प्राण-प्रिय पुत्र करूणेश को रंज

नहीं कर सकते। जैसी उसकी राय होगी वैसा ही मैं करूँगा। दुनियाँ हँसती है तो हँसने दूँगा—कारण मुझमें ता क़सूर नहीं, कोई ऐब नहीं। फिर संसार में ऐसा घोर अन्याय, आँख रहते अँधा। अब भी लोग दिल-दिमाग को ठीक क्यों नहीं करते। उस नरकगामी गर्त में ढकेलने वाली लीक की अवहेलना और उपेक्षा क्यों नहीं करते। मैं तो इससे पूरा सहमत हूँ। और वधुवरण करने के लिए मैं अपने प्रिय और सुयोग्य पुत्र करुणेश को पूर्ण अधिकार दूँगा। उसी विवाह पर, उसी नवीन पत्नी के ऊपर तो उसका भविष्य निर्भर करता है।

करुणेश क्या चाहता था? वह तो चाहता था एक सन्देश। उसने कहा कि मैं विवाह करना क्या चाहता हूँ? मैं तो चाहता हूँ और है मेरा सब से बढ़ कर एकमात्र ध्येय और उत्कट अभिलाषा तथा कामना कि मैं समाज में एक नवीनता ला दूँ, एक विशेषता का श्रीगणेश कर दूँ, एक विलक्षणता की टांग अड़ा दूँ, एक इन्क़लाब की ध्वनि लगा दूँ, नारा लगा दूँ जो धरा-धाम के कोने-कोने को हिला दे, प्रतिध्वनित कर दे, सामाजिक व्याधि और चिर-पोषित एवं चिर-संचित आधि की टांगें उखड़ जाएँ। आज बीसवीं शताब्दी का ज़माना! परिवर्त्तन और हेर-फेर का समय! तड़िद्‌लियां और नानाविध हलचलों का युग। पीछे क्यों? समाज के नाम पर धर्म की इतनी उपेक्षा क्यों?

किसी वस्तु की समीक्षा करना तो हरेक व्यक्ति का, मानव

का कर्त्तव्य और धर्म है बशर्ते कि वह समीचीन, उचित और न्यायसंगत हो। वहक की गुंजाइश नहीं। पक्षपात का स्थान नहीं। कमरांश इसी उधेड़बुन में रात-दिन काटने लगा।

३

रमेश और लक्ष्मी का जीवन-क्रम रुकता सा मालूम हो रहा था और इधर अब सुखिया का जीवन-क्रम और जटिल से जटिल-तर होते जा रहा था। वर-वरण करने की बेढंगी रफ्तार रात-दिन अथक और अविश्रान्त रूप से चल रही थी। घर-वर की खोज हो रही थी। कई जगहों में तो अच्छे घर मिले पर वर नहीं, कहीं तो वर मिले पर घर नहीं। ओह! दुनियाँ की चाल। वस्तुत: स्त्री-जीवन, नारी-जीवन एक अभिशाप! एक कहता कि भाई! सुखिया के बारे में तो कुछ गड़बड़ी मालूम होती है। कोई कहता था कि जनाब वही सुखिया जो कि अब सुखिया कहलाने की क्षमता नहीं रखती। वह तो अब कौड़ी के तीन है।

वाचक वृन्द, अच्छी तरह जानते हैं कि इस बेचारी सुखिया को बूड़ने से मोहन ने बचाया था और उसी की कुशलता, चतु-राई और कार्य-चातुरी से यह अफ़वाह लोगों के दिल में अधिक

जगह नहीं बना सकी थी। लेकिन फिर तो आखिर यह दुनियाँ ही है। यहाँ तो बुरे-भले का समागम, प्रिय-अप्रिय का सम्मिश्रण है ही। कोई भी चीज़ अपनी-अपनी रूचि के अनुसार अच्छी लगती है। जो चीज़ एक के लिए गुणकारी, फायदेमंद साबित होती है वही दूसरे के लिए अहितकर और नुक़सानदेह प्रमाणित होती है। यह तो नित्य रोज़ का अनुभव बतलाता है।

मोहन एक दिन विचार-प्रवाह में बहता सा प्रतीत होता था। उसकी आकृति और विशेषत: मुखाकृति को देखने से जान पड़ता था कि वह एक ऐसी विचार-धारा में निमग्न है, निमज्जित है कि यथार्थत: साधारण-व्यक्ति से परे थी। ठीक उसी समय एक आगन्तुक का शुभागमन होता है। उस आगन्तुक में एक आकर्षण था, एक मादकता थी, एक दिलचस्पीपन था, उसके ललाट पर एक महानता-सूचक रेखा अंकित सी मालूम होती। उसकी धमनियों में एक लावण्य था। उसकी बोली में एक लोच था। उसके सम्भाषण में एक मिठास और मृदुता परिलक्षित होती थी। हरेक पहलू से देखने से मालूम होता था कि वह आगन्तुक युवक एक देशोद्धारक होगा, और होगा समाज, राष्ट्र और देश के नाम पर आत्मोत्सर्ग करने वाला।

भला, ऐसी विशेषताओं और खूबियों से परिपूर्ण युवक किसका दिल हिला नहीं देता। किसके हृदय में एक सनसनी पैदा नहीं कर सकता। किसके लिए एक गौरव नहीं होता। सहसा मोहन के मन में एक ख्वाहिश की पैदाइस हुई, एक इच्छा का प्रादुर्भाव

हुआ, उसकी मानस-निर्झरणी से एक प्रबल प्रवाह प्रवाहित हो चला। उसने नवीन आगन्तुक से सवाल किया, हुजूर आपका शुभस्थान कहाँ? आपकी तारीफ़ क्या? आप कहाँ से तशरीफ़ ला रहे हैं?

आगन्तुक ने उत्तर दिया—अजी भाई! घर से क्या ज़रूरत है आप को?

मोहन ने कहा—आपके विषय में जानने की मेरी बड़ी प्रबल इच्छा है।

आगन्तुक ने तब इधर-उधर झाँकते हुए कहा—शायद आप तो नामी-ग्रामी धर्मेन्द्र जी को जानते होंगे?

मोहन ने कहा—कौन धर्मेन्द्र जी? वही जिनके प्रताप से, जिनके बाहुबल से, आज निर्जीव भी सजीव हो उठते।

आगन्तुक ने कहा—हाँ, हाँ वही, धर्मेन्द्र।

मो०—महाशय जी! क्या यह सच्ची बात है कि उनके सबसे छोटे पुत्र एक दर्शनीय और अनुकरणीय सुपुत्र हैं?

आगन्तुक ने कहा—आप को कैसे मालूम?

मो०—आप नहीं जानते कि पाप छिपाने से छिप नहीं सकता और पुण्य-सुकृति को कोई दबा नहीं सकता। ये अपनी-अपनी विशेषताऐं रखते हैं। प्रत्येक वस्तु निज विशेषता रखती है।

आगन्तुक—आप को उनसे कुछ काम है क्या?

मो०—हाँ, विशेष काम है।

आगन्तुक—क्या मुझे जानने का अधिकार है ?

मो०—नहीं, नहीं, वह एक गुप्त बात है।

आगन्तुक—तो क्या आप इससे बंचित रखेंगे ?

मो०—भई ! आपसे तो मैं कहता हूँ कि वह एक प्राइवेट बात है।

आगन्तुक—खैर, तब मैं क्या करूँ ? तब तो किसी तरह की गुँजाइश ही नहीं, कोई स्थान ही नहीं।

मो०—फिर पूछा कि महाशय जी ! मैंने सुना है कि करूणेश बाबू एक बड़े ही विख्यात, मशहूर विद्वान् हैं, उनसे टक्कर लेने की हिमाकत शायद विरले ही करें। आगन्तुक ने भ्रू-भंगता करते हुए कहा, हाँ बात तो ऐसी ही सुनने में आती है।

मो०—केवल इतना ही नहीं—बड़े मिलनसार, देश-हितैषी शुभचिन्तक, दीन-दुखियों के प्रति विशेष खयाल रखनेवाले और सामाजिक रूढ़ियों का तो पैर ही उखाड़ देते हैं ? क्या आप इस विषय पर विशेष प्रकाश डालेंगे ?

आगन्तुक—हाँ भाई, बात तो सब बिल्कुल सही है। वह तो सिर्फ इतना ही नहीं। परोपकार के लिए जीवन की आहुति देने वाला, गिरे हुए को उठानेवाला, पथ-भ्रष्ट को मार्ग पर लानेवाला निराश और हताश के लिए एकमात्र आशा और उत्साह। इन्क़लाब की लहरें सर्वदा उनकी नस-नस में तरंगित होती रहती हैं, धधकती रहती हैं। वह तो शायद एक नये युग का स्वप्न

देखता है। और बहुत-सी विशेषताएँ हैं, कहाँ तक गिनाऊँ।

मोहन—तब तो सचमुच वह एक देव होगा, देव ही क्या महादेव !

आगन्तुक—हाँ, हाँ इसमें भी शंका है। यह तो निस्सन्देह है।

मो०—मेरी उत्कट अभिलाषा होती है कि मैं उनका दर्शन करूँ। लेकिन भाग्य में रहे तब तो।

आगन्तुक—क्या भाई, आप बतला सकते हैं कि आपकी श्रद्धा उनके प्रति वास्तविक है ? यथार्थ में आप उनसे दर्शन करना चाहते ? क्या आप का कोई विशेष ध्येय है, कोई खास लक्ष्य है, कोई उनके लिए आपके हृदय में एक विशेष स्थान तो नहीं ?

मो०—श्रीमन् ! ऐसे सुपुत्र से सचमुच में देश का उद्धार होगा। सदियों की जर्जरित रूढ़ियों का होम होगा। समाज का कोढ़ सदा-सर्वदा के लिए नष्ट हो जायगा। तो आप ही बतलायें ऐसे देव-सदृश्य मनुष्य का दर्शन क्यों न कल्पवृक्ष होगा ?

आगन्तुक—अच्छा तो आप अपना पूरा पता दे दें। मैं जाता हूँ। उन्हें सारी बातें कह सुनाऊँगा। जैसी उनकी मर्ज़ी होगी वैसा चाहें तो पत्र-व्यवहार करूँगा और न तो खुद ही आने की तकलीफ़ करेंगे।

मो०—बाबू, सरकार, आप जो बातें कह रहे हैं सो तो सब ठीक हैं लेकिन एक ही बात बहुत खटकती है। वह यह है कि

उन्हें कृपया यहाँ न भेजेंगे। कारण है कि वैसे महान् व्यक्ति का यहाँ आगमन! मेरे पास है ही क्या कि मैं उनका स्वागत करूँगा।

अच्छा कृपा करके मेरा पता लिख लें। मेरा नाम तो मोहन है, मुझे लोग उपदेशक कहा करते हैं। शायद आपने भी कभी नाम सुना होगा। हाँ, भाई बस करो, बस, मैं तो अच्छी तरह आपके नाम से परिचित हूँ। बहुत दिनों से वाक़िफ था लेकिन देखा नहीं था। अब तो आगन्तुक से रहा नहीं गया। उसने कहा भाई। मोहन, वस्तुत: मैं तो भ्रम में था, मैं एक अजीब तरह के पशोपेश में था। मेरे लिए तो आप एक अजनवी सा मालूम होते थे और वही बात आपके लिए मेरे प्रति। क्या आप बता सकते हैं कि आपका ख़याल मेरे प्रति कैसा है?

मो०—धीमन्! जान पड़ता है कि आप में ईश्वरीय देन है। कुदरती ताक़त है। आप के चेहरा-मुहरा, रूप-रंग, आकार-प्रकार, आकृति-प्रकृति से ज़ाहिर होता है........अजी कहीं आप ही तो करुणेश बाबू नहीं हैं?

हाँ, तो पाठकगण अब सोच सकते हैं, कल्पना कर सकते हैं कि उनदोनों पर कैसी बीती होगी। दोनों में लम्बे अरसों तक, कई घंटों तक बात-चीत चलती रही। दोनों के दोनों अपरिचित थे, एक दूसरे के लिए विदेशी सा प्रतीत होते थे। उनमें से हरेक एक दूसरे के लिये एक रहस्य। अब तो आश्चर्य की सीमा न रही।

करुणेश बाबू कुछ अनमना सा हो गये। आवाज़ रुकती सी मालूम पड़ी। अवाक् दीख पड़े और क्षण भर के लिए ऐसा मालूम हुआ कि वहां निस्तब्धता, शान्ति, अमन चैन छा गया। परन्तु अब होता तो क्या होता। करुणेश बाबू ने धीरे स्वर में कहा—हाँ, मुझे ही करुणेश लोग कहा करते हैं।

मोहन ने अभिवादन कर करुणेश बाबू को गले लगा लिया। अब आश्चर्य और निराशा की जगह पर हर्ष और आशा के चिन्ह देख पड़ने लगे।

मो० ने कहा—करुणेश बाबू मैं धन्य हूँ, मेरा भाग्य धन्य है, धन्य है, मैं तो कितना भाग्यशाली हूँ। ओह! आपके दर्शन पाकर मैं तृप्त हो गया, किस भाषा में, किन शब्दों में, किन लब्जों में इसकी व्याख्या करूँ।

करुणेश—मोहन! ऐसी भावना क्यों? ऐसी धारणा क्यों? इतना आदर और सत्कार क्यों? मैं तो आप जैसा ही एक मनुष्य हूँ। आप में और हम में कोई फर्क नज़र नहीं आता। कोई अन्तर की रेखा मध्यस्थित नहीं है। एक ही सूत्र में दोनों बंधे हैं। कारण, आप भी सृष्टिकर्त्ता का एक जीव, मैं भी उसी स्रष्टा का एक प्राणी। फिर भी तारीफ़ का ऐसा पुल बाँधना क्यों?

मोहन—प्रिय करुणेश! क्या इसी को तारीफ़ का पुल बाँधना कहते हैं? मैंने तो पहले ही अपनी असमर्थता प्रकट की कि मेरे पास इतने शब्द-भण्डार नहीं, मुझ में शब्द-चातुरी नहीं,

भाषा, शैली और योग्यता की बिलकुल कमी। आपका गुण-गान करूं तो कैसे करूँ और आप को तो मज़ाक ही सूझता है। ऐसा क्यों न हो; बड़ों का लक्षण ही ऐसा होता है। अस्तु।

करुणेश सहम गये। लज्जा से अभिभूत हो गये। सिर नीचा कर लिया। मुखड़ा कुछ लाल सा जान पड़ा। आखिर वे भी तो मनुष्य थे, इन्सान थे अव्वल दर्जे का। भद्रता थी प्रथम श्रेणी की। विद्वान् थे, धैर्यवान थे, वीरता की साक्षात् मूर्ति, दया और सहानुभूति का तो अक्षय भाण्डार। फिर वे लज्जित क्यों न होते। कारण पहले ही वे अपने विषय में संभाषण के क्रम में, बात-चीत के सिलसिले में, कुछ बोल चुके थे जो न्यायानुसार, भद्रता के नाते एक सुयोग्य और काबिल के मुख से शोभा नहीं देता। अतः यहां पर कुछ मनुष्यत्व की अवहेलना सी झलक गयी थी। करुणेश से पुरुष के लिए यह बात बहुत खटकी। खैर—मोहन और करुणेश में भ्रातृभाव का जागरण हुआ। दोनों एक दूसरे के प्रेम-पाश में बँधते से दृष्टिगोचर हुए। दोनों की आँखें एक दूसरे की ओर अडिग हो गईं; टकटकी बँध गई।

अब दिल के गुबार निकलते से नहीं बल्कि रुकते से जान पड़ते थे। लेकिन दोनों के दोनों मोहन और करुणेश संकट में हिमालय के समान अटल और अचल रहने वाले थे। समय के मुताबिक काम करने वाले थे। अब रुख बदलना ही पड़ा।

करुणेश ने पूछा—भाई मोहन ! मुझसे क्या कोई काम है ?

वज़ह, आप मुझे खोज रहे थे। मेरे लिये लालायित थे, दिलो-जान से मुझ पर फ़िदा थे। क्या बात क्या? अब ज़रा कह तो सुनाइए।

मोहन—क्या कहूँ? क्या न कहूँ। मैं तो इधर के रहा न उधर के। दुनियाँ विचित्र है, अजब है। क्या करूँ? आजकल की हवा कितनी गन्दी है। वातावरण कितना दूषित और विषाक्त है, समाज कितना कुत्सित और निकृष्ट है। धर्म का नामोनिशान नहीं। वही बेढंगी रफ़्तार। वही पुराना राग-अलापना। वही पुरानी लकीर के फ़कीर। उफ़! जीवन भार सा मालूम होता है। अच्छा तो सुनिए। शायद रमेश-लक्ष्मी को तो आप अच्छी तरह जानते होंगे? उसके छः सन्तान हैं। तीन लड़की और तीन लड़के। सबसे छोटी लड़की जिसका नाम सुखिया है, सचमुच में सुखिया थी लेकिन अब तो दुखिया ही कहना ठीक है। ओह! हृदय काँप उठता है।

करुणेश—आख़िर बात क्या है, कहिए तो सही।

मोहन—सुखिया रमेश के छः बाल-बच्चों में सबसे होनहार, तीव्र बुद्धि, प्रतिभाशालिनी और तेजस्विनी मालूम होती थी। अतएव माता-पिता की बड़ी उत्कट इच्छा हुई कि उसे अच्छी शिक्षा दें, उच्च बनावें। महिला-संसार में एक नमूना रख, स्त्री-समाज के सामने सुखिया एक अच्छे मिसाल के तौर पर दाख़िल हो। इसी विचार से ओत-प्रोत होकर, इसी लक्ष्य को लेकर उन लोगों ने

बेचारी सुखिया को शिक्षा-दिलवाना शुरू किया लेकिन व्यर्थ, निरा स्वप्न, आशा पर ठण्ढा पानी फिर गया; मनमोदक खात्मा को प्राप्त हो चुके। आख़िर तो यह दुनियाँ है। इतना कहते-कहते मोहन रुक गया। उसे हिम्मत नहीं पड़ी कि आगे वह कुछ कहे।

करुणेश – तुरत ही ताड़ गया। कहा भाई! समाज के नाम पर आँसू बहाना पत्थर पर "जूँ रेंगना" है। शिक्षा-प्रणाली, शिक्षण-पाठ और क्रम को धिक्कार है, एक बार नहीं कोटिशत धिक्कार। आप ख़ून के आँसू बहाएँ तो भी कोई पोछने वाला है? कितने ऐसे पायेंगे? तो अच्छा, कहिए तो बात क्या? आख़िर आप चाहते हैं क्या?

मोहन— मैं तो यही चाहता हूँ। समाज के वायुमण्डल अब और दूषित न हो। उस सुखिया की ज़िन्दगी कैसे बसर होगी? उसका जीवन-यापन कैसे होगा? समाज में उसका स्थान क्या होगा? वह अब कैसे मुँह दिखलायेगी। मुख पर तो कालिख है। अमिट कलंक की टीका! और क्या कहूँ। उसके मा-बाप, रमेश और लक्ष्मी तो फ़िक्र के मारे, शर्म के मारे, चिन्ता के सताए रोगी से मालूम होते हैं। हो सकता है कुछ ही दिनों में जीवन-लीला समाप्त हो जाए। क्या अब आप कोई समुचित उपाय बतायेंगे?

करुणेश—ओह! समाज को लानत है। ऐसी शिक्षा को धिक्कार है। गर्त में जाय ऐसा समाज, जहन्नुम में जाएँ ऐसे शिक्षकगण। समाज और शिक्षा-शिक्षण को अभिशाप! मानवता

का भीषण ह्रास। पाशविक वृत्ति को शत-शत बार शाप है, धिक्कार है। धिक् धिक्। अच्छा तो आपका इरादा क्या, आपका अब अभिप्रायः क्या?

मोहन—रुकते हुए बोला। अब भी उस सुखिया का उद्धार कर दीजिये। उसके कुल पर लांछन लगने से बचा दें। बात अभी फैली है नहीं। केवल घर ही वाले जानते हैं। अड़ोस-पड़ोस वालों को कुछ भी मालूम नहीं। गत वर्ष में उसकी शादी करने के लिए शक्ति भर कोशिश-पैरवी की गयी। घर-वर ढूढ़ने में कितने दिन-महीने लग गये लेकिन तो भी ठीक-ठेकाना नहीं हुआ। अब पढ़ाना-लिखाना तो बिल्कुल बन्द ही है। चूल्हे-भाँड़ में जाय पढ़ना-लिखना। अभी भी कोई उतना बिगड़ा नहीं है। इसी साल विवाह करने का विचार है। जैसे-बने वैसे उसको निबाहना है। नहीं तो अनर्थ हो जायगा। परिवार का विनाश होगा। समाज का भीषण ह्रास होगा। अब आप की क्या राय है?

करुणेश—खैर, इसकी परवाह नहीं। इतने ही में आप भयभीत हो गये। आप का हृदय कितना डरपोक है! आप अपने को उपदेशक कहते हैं, इसी बुज़दिली पर, इसी बूते पर, इसी काबू और हिम्मत पर! आप को तो अभी दुनियाँ में कितने उत्थान-पतन देखने हैं। कितनी अड़चनें आयेंगी और जीवन-नईया को हिला डालेंगी, भँवरी में डूबा देंगी। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सामाजिक बन्धन है, एक ओर धर्म है तो दूसरी ओर कर्तव्य। एक तरफ़ भलाई है और दूसरी तरफ़ बुराई। एक तरफ़ निराशा

है तो दूसरी तरफ़ आशा, एक ओर मान है और दूसरी ओर अपमान। क्या कीजियेगा, संसार तो ऐसा है ही।

मोहन—तो आप सुखिया से विवाह करेंगे ?

करुणेश—क्यों नहीं ? जरूर।

मोहन - आप को तो इसके सम्बन्ध में कोई हिचकिचाहट नहीं ? कोई खटका नहीं, कोई बन्धन नहीं; कोई रुकावट नहीं।

करुणेश - सो क्यों ? प्रत्येक मनुष्य भाग्यनिर्माता स्वयं है। हरेक को अपने पर अधिकार है बशर्ते और लोगों की नजर में, आँखों में वह बात खटके नहीं। लेकिन मैं एक बात कह दूँ। मैं अंधविश्वासियों का घोर विरोधी हूँ। रूढ़िवादियों का कट्टर शत्रु हूँ। 'भेड़िए की पोशाक में मेमना' से बहुत ही चिढ़ है। पाखण्डियों से, कुटिलों से, सनातन-धर्म के नाम पर समाज का पतन करने वालों से मैं कोसों दूर रहना चाहता हूँ। परन्तु इस संसार में रह कर अलग रहूँ तो कैसे ? मेरा जन्म मनुष्य-तन में हुआ। मैं अपने को मानव कहता हूँ। और इतनी सी कमज़ोरी को दूर नहीं कर सकता ! मैं उस सुखिया को समाज का पाप नहीं होने दूँगा। मैं उसे दूसरे मजहब वाले के पास भटकने नहीं दूँगा। मैं उसे परधर्मावलम्बी की मुखापेक्षी देखना नहीं चाहता। मैं उसे आत्म-हत्या भी करने देना स्वीकार नहीं करूँगा। वह भी मानव, एक अबला, एक नारी। मैं उसका उद्धार करूँगा। उससे पाणिग्रहण करूँगा। समाज अँधा हो

जाय तो होने दो। मैं आँख रहते अंधा क्यों होऊँ? बुद्धि रहते मूर्ख क्यों? अनुभव रहते शून्य क्यों? विवेक रहते विवेक-हीन क्यों?

मोहनने मन ही मन कहा। धन्य करुणेश! धन्य माता-पिता के लाल! तू धन्य! आनन्द और खुशी के मारे बोल नहीं सका। उसने अपने-आप कहा कि सचमुच यह देव है, समाजोद्धारक है, मानव-हितैषी है, परोपकारी है, वीर है, धीर है, साहसी है और है निडर। ठीक इसी समय मोहन के हृदय में एक श्रोत उमड़ पड़ा। उससे रहा नहीं गया। उसने करुणेश बाबू से पूछा—महाशय, क्या आप स्वेच्छाचारी हैं? क्या आप स्वतन्त्र हैं? क्या आप सर्वेसर्वा हैं?

करुणेश—इससे तुम क्या समझते? तुम्हारा कहने का असली मतलब क्या? तुम्हारा इन प्रश्नों से तात्पर्य क्या? तुम विवाह सम्बन्धी बातों के विषय में संकेत कर रहे हो। तुम्हारा इशारा इसी के प्रति है। हाँ तो, करुणेश बाबू आप ठीक कहते हैं। आप तो लाल बुझक्कड़ मालूम होते हैं। आप सचमुच में नब्ज पहचानने वाले एक औषधि-विशारद और विशेषज्ञ हैं। मोहन ने कहा।

करुणेश ने कहा—माता-पिता, कुटुम्ब-परिवार, बन्धु-बान्धव से राय-मशविरा लेना तो मैं उचित समझता ही हूँ। लेकिन आज का समाज क्या इस प्रकार के कुत्सित व्यवहार

से सहमत होगा ? अगर नहीं तो फिर मुझे क्या करना होगा ? वही जो एक वीर हृदय के लिये उचित है। एक सामाजिक कुरीतियों एवं वीभत्स और घृणित अत्याचारों और व्यभिचारों से दग्ध-हृदय वाले मनुष्य के लिये यथोचित है। मैंने दुनियाँ को देखा है। दुनियाँ, दुनियाँ नहीं, यह तो आधि है, व्याधि है और है प्राणी-मात्र का सब से ज़बरदस्त और मज़बूत बन्धन।

मोहन—करुणेश बाबू! एक बात और सुखिया के बारे में कुछ कहना है। वह यह कि पथ-भ्रष्टा है, धर्म-मार्ग से फिसल चुका है लेकिन वह तो बिल्कुल निर्दोष है। कारण वह निरा अनभिज्ञ थी। उसे कुछ मालूम ही नहीं था। एक-ब-एक कुचालियों और दुष्टों तथा चाटुकारों के पंजे में फँस गयी। अब वह क्या करती ? आपको तो इसमें कोई आना-कानी नहीं, कोई विपत्ति नहीं ?

करुणेश—सचमुच मुझे बड़ा ही दुःख होता है। एक हार्दिक वेदना होती है। एक कसक मसक कर रह जाती है। एक टीस होती है, एक क्षोभ होता है। आप में ऐसी 'बू' कैसी ? आपकी बातें तो वस्तुतः अपमानजनक हैं। अजी, मैं कहता हूँ कि समाज की मुझे परवाह नहीं। किसमें इतनी हिम्मत है कि इसका खण्डन करे। अगर आज मैं सुखिया को ठुकरा देता हूँ तो जानते हो क्या होगा ? आज वह व्यभिचारिणी की पदवी से आभूषित होगी। जाति से उसका बहिष्कार

होगा। उसकी इज्जत लुटी गयी। उसका सर्वस्व अपहरण किया गया। उस हालत में वह आत्म-हत्या कर सकती है, लेकिन माया के वशीभूत होकर वह हिचक भी सकती है। तब फिर क्या होगा? वही अपना उल्लू सीधा करने वालों का शिकार हो सकती है। मुसलमान-धर्म का अवलम्बन कर सकती है। एक ईसाई हो सकती है। तब समाज की हस्ती कहाँ रही? कहाँ उसका सनातनी धर्म? कहाँ उसका अपना समाज, अपना जन-धन-परिवार? इसलिये तो मैं कहता हूँ कि आपको इसकी फ़िक्र क्या? जो निन्दा करे, जो इसकी शिकायत करे, जो इसे दोष प्रमाणित करे, वह मेरे सामने आवे, और जैसे बने तर्क-वितर्क करे। मैं समाज का ऐसा अनहोनी पतन देख नहीं सकता। चाहे जो हो।

मोहन ने कहा। ओह! सहृदयता का कितना उज्ज्वल उदाहरण। मानवता का कितना अटूट और अखण्डनीय प्रमाण! सुधारक की कितनी बलवती मनोइच्छा और मनो-भावना! सृष्टि का कैसा अद्भुत लाल! समाज का कैसा जागरण! हिम्मत के पुतले, सरस्वती के लाड़ले, भारत की लाल-लाली, जीवन-अंधकार का केवल एक निष्प्रभ रश्मि! वसुन्धरा आज धन्य है, तू खाली नहीं अब भी तुझमें सार है। नीरस रहते हुए भी तू आज सरस हो गयी। असार रहते भी तू सार हो गयी। विधर्मी होते हुए भी तू आज धर्मी हो गयी। मोहन आगे नहीं बोल सका। वह मूकवत् हो गया। विचार-

श्रोत, निर्झरिणी की तरह निर्गत होते-होते सहसा रुक गया। उसका प्रवाह अकस्मात् बन्द हो गया। वह तो कहना चाहता था बहुत कुछ लेकिन कह नहीं सका। आँखों से आँसू की झड़ी लग गयीं। वर्षा का दृश्य उमड़ आया। गले से करुणेश बाबू को लिपट गया। स्नेह-प्रेम, भक्ति-श्रद्धा का खासा एक चित्र खिंच गया! गला अवरुद्ध .... ।

भला करुणेश तो भलीभांति समझ ही गया था, उसने मोहन को तसल्ली दी, धैर्य दिलाया। भाई! आप इतना अधीर क्यों? अपने को उपदेशक कह कर भी अबोध बालक सा बना लेना! क्या आपको यह शोभा देती है? अब बताइए, मकसद क्या, आपका संकल्प क्या? उस सुखिया को जल-धार में बहते से छान लेना; उसकी जीवनोत्सर्ग करने से रक्षा करना, डूबने से छानना; यही न?

मोहन—जी हाँ।

करुणेश—जाइए, इसके सम्बन्ध में बात-चीत कर आइये, सब कुछ ठीक-ठाक कीजिये। जितना जल्द हो, इस समाज के कुष्ट रोग को दूर करें। मैं तो सदा-सर्वदा सनद्ध हूँ, तैयार हूँ।

मोहन तो आनन्द के मारे फूला नहीं समाता। आज उसे सदियों की तपस्या का फल मिल गया सा मालूम होता है। मालूम होता है कि उसे कल्पवृक्ष का दर्शन हुआ। आनन्द और खुशी के मारे अपने को खोया सा पा रहा था। द्रुतगति से,

रमेश और लक्ष्मी के पास गया, सारी बातें कह सुनायीं। ओह! जीवन-दीप बुझते-बुझते बच गया। जीवन-लीला समाप्त होते होते रह गयी। धन्य, भगवन्! तेरी महिमा अपरम्पार, तेरी लीला विचित्र! यथार्थ में तू सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, और समदर्शी हो, नहीं तो आज एक परिवार का हनन होता, एक अभिशाप होता। और बुनियाद भी असमय ही में मिट जाती! सुख की साँस लेते हुए रमेश ने कहा।

भला ऐसी हालत में बिलम्ब क्यों होता? चट मड़वा, पट भतवान वाली कहावत शीघ्र ही चरितार्थ हो गई। तुल-तैयारी की जरूरत नहीं। साज़-बाट की आवश्यकता नहीं। इस विवाह के बारे में अधिक व्यवस्था की क्या ज़रूरत? सुखिया का ब्याह करुणेश बाबू के साथ खुशी-ब-खुशी हो गया। अब ज़िन्दगी-बसर अच्छी तरह होने लगा। दोनों पति-पत्नी, दाम्पत्य प्रेम में बँध गये।

पाठकगण! ज़रा सोचिए तो सही, क्या हृदय को दहला देने वाला दृश्य! मनुष्यता का क्या यही लक्षण है? दुष्कर्म का फल कैसा होता है! इसी घटना से साफ ज़ाहिर होता है। ऐसा कौन सहृदय होगा जो बिना आँसू बहाए रह सकेगा?

उफ़! क्षण भंगुरता में भी ऐसी हरक़त! नश्वरता में भी ऐसी सीनाज़ोरी।

४

रमेश और लक्ष्मी का जीवन-चक्र बिना रोक-टोक के घूम रहा था। उनके जीवन-शकट में केवल एक ही विकट नहीं, अनेक उलझनें थीं। कभी सुचारु-रूप से चलने को नहीं। रास्ता बीहड़ था, मार्ग दुर्गम और दुर्भेद्य था, जहाँ कहीं नज़र जाती निराशा ही निराशा दृष्टिगत होती। पर क्या अपना कोई अधिकार था, अपना कोई वश था, अपनी कोई हस्ती थी? किसी का इस बेचारे का दुखाहत भाग्य के लिए चारा ही क्या? एक संकट से उबरने नहीं पाया, उससे सुलझने नहीं पाया कि दूसरी विपत्ति आकर सिर पर सवार। ठीक है "विपत्ति कभी अकेले नहीं आती।"

उन दिनों बेगारी और गुलामी की प्रथा जोरों पर थी। किसानों की दशा शोचनीय हो रही थीं। अभाग्यवश दुर्भिक्ष के भी चिन्ह दिखाई दे रहे थे। अनावृष्टि की सूचना थी। वर्षा का एकदम अभाव। बीमारियों की तूती बोल रही थी। चारों ओर हाहाकार, त्राहि त्राहि की पुकार से आकाश गूंजित हो रहा था। अब रमेश भी तो इसी मुसीबत में फँसा हुआ था। एक दिन की बात है कि वह छः-पाँच में था कि क्या करूँ, क्या न करूँ। इसी उधेड़बुन

अगर मैं रहती तो सचमुच में उसकी जीभ पकड़ कर खींच लेती। चाहे तो वही रहता अथवा हम ही लोग रहते। उसकी इतनी हिम्मत, इतनी नज़ाकत, इतना बहक, इतना घोर अन्याय। आखिर हमलोग भी तो आदमी हैं, हैवान नहीं। हमलोगों का भी तो इज्ज़त आबरू है। जान किसे नहीं प्यारी होती? मोह-माया किसको नहीं है। अपने आप हमलोग बेक़ायदे जान देने क्यों जायँ? वह बड़ा अपने घर का, हम लोग छोटे हैं अपने घर के। फिर उसका उलहना कौन सुनेगा। चलिए, वज्र पड़े ऐसे घर-द्वार पर। ईश्वर शरीर में सुख देगा तो जहाँ पावेंगे वहीं मजदूरी कर खा-कमा लेंगे।

वाचकवृन्द! आपलोगों को सचमुच आश्चर्य और विस्मय होता होगा कि जब रमेश और लक्ष्मी की छोटी कन्या 'सुखिया' का विवाह एक ऐसे महान्, परोपकारी, विवेकी, दूरदर्शी और सहृदय व्यक्ति के साथ सम्पन्न हुआ था जो उन्हें दैवी कठिनाइयों और आपत्तियों से भी मुक्त कर सकता था और वह था करुणेश। फिर भी ऐसी मुसीबतों में सतत रमेश और लक्ष्मी का उलझना एक रहस्य अवश्य है जिसे आपलोग अन्त में ज्ञात कर विस्मय-विमुग्ध और शोकाहत हो जायेंगे।

रमेश ने मालिक की सारी बातें सुनी थीं केवल पारिवारिक बन्धन में फँस कर। वह तो अपनी धर्म-पत्नी का रुख जानना चाहता था। अब क्या? उसने तो उस अबला में सबला का पौरुष, बल, साहस और वीरता पायी। वह स्तम्भित हो गया।

इतनी विषम स्थिति और भीषण परिस्थिति में भी उसने एक आलोक, पाया उसने एक चमक देखी, जो सर्वदा के लिए उसे प्रकाश-प्रदान करने वाली थी और थी अप्रतिहत।

वास्तव में दुःख से तो वे जर्जरित हो रहे थे, उस पर ऐसा भीषण प्रहार। प्रतिष्ठा का ध्यान और कुल का ज्ञान ही ने उन्हें ऐसे आग-बबूला कर दिया था।

अतः फलस्वरूप अपने बाल-बच्चे और बधना-बोड़ियाँ के साथ घर-द्वार छोड़ दिये और जाकर दूसरी जगह बस गये। इसीको कहते हैं दृढ़-प्रतिज्ञ और आन पर मिट जाना।

हाँ तो, भीषण और भयावह रात भी सुप्रभात से वंचित नहीं है। काली और मेघाच्छन्न घटाएँ भी निर्मल आकाश से परे नहीं हैं। उषाकाल का आगमन सूचित करता है कि साँयकाल भी आयेगा।

फलतः ईश्वर के कटु विधान से कौन परे है। कौन इससे मुक्त है। रमेश और लक्ष्मी को नयी जगह में आये हुए एक सप्ताह भी नहीं बीतने पाया था कि उनके प्रथम मालिक महोदय बीमार पड़ गये। अब तो दौड़-धूप होने लगी। कभी फलाँ वैद्य आते, कभी फलाँ डाक्टर आते। कभी अमुक सारजन आते तो कभी अमुक हकीम साहेब आते। डाक्टर, वैद्यों और हकीमों का तो ताँता सा बँध गया। उसका बसा हुआ घर उजड़ने पर था। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। ससीम में भी असीम निहित है, उन्नति में

भी अवनति सन्निहित है। मानव-जीवन लघुतम और काल की अवधि वृहत्तम। परमात्मा अचल, ध्रुव और सत्य, मनुष्य नश्वर, अध्रुव और असत्य। फिर भी उस सत्ताधीश महाप्रभु के सामने उसका वश ही क्या ? अन्ततः लाखों कोशिश करने पर भी मालिक महोदय नीरोग नहीं हुए और आठवें दिन अपनी कन्या के विवाह की अभिलाषा को साथ लिये हुए इस दुनियाँ से कूच कर गये। अब इसे क्या कहें ? उस दीनावस्था रमेश और लक्ष्मी की उर्ध्वश्वासों की आहें उन पर पड़ीं अथवा गगनतल से वज्रपात हुआ ?

अब तो उसका घर नाश हो गया ! आर्त्तनाद से पृथ्वी कांपती-सी जान पड़ी। परन्तु उपाय क्या ? मृत्यु-समाचार एक विद्युत्-सा फैल गया। बहुत से लोगों को तो असीम आनन्द हुआ। वह कठोर और कड़ा मालिक था। उसकी ज़मींदारी बड़ी कड़ाई से पेश आती। इसलिये सताए जाने वाले लोगों के आनन्द की सीमा न रही। उन सबों में प्रतिशोध की अग्नि धधक रही थी परन्तु असमर्थता थी। वे सब चाहते थे कि कब और कैसे ये बच्चे राम अपने को मालिक की शान में चूर-चूर पाने वाले का बदला लें।

ओह ! लोगों के साथ इसका बर्ताव इतना कड़ा, बर्बरता तो हद खत्म कर देती थी। क्या वह मनुष्य था, वह दानव था, पिशाच था, राक्षस था। भले ही खत्म हो गया। भिन्न-भिन्न तरह को विचार-धारा लोगों में प्रवाहित हो रही थीं। मगर सचमुच

में क्या इसको सभ्यता और मनुष्यता की भावना कहेंगे ! नहीं, नहीं, कदापि नहीं। इससे तो एक दुर्गन्ध निकलती है, एक 'बू' आती है जो मनुष्य-जीवन पर धब्बा लगा देती है। इसमें तो स्पष्ट रूप से स्वार्थता है। अपनापन का भाव है। तो फिर मनुष्य कहने और कहलाने का दावा कैसा। अपना पेट तो कुत्ता भी भर लेता है।

रमेश और लक्ष्मी को भी ये बातें मालूम हो गईं। उनका माथा ठनक पड़ा। ठण्ढी आहें खींचते हुए कहा, भगवन् ! यह क्या ? उस बेचारे मालिक बाबू के साथ ऐसी निष्ठुरता क्यों ? उसके साथ उसके परिवार का भी सत्यानाश हुआ। क्योंकि सबका दारोमदार एक उसी पर था।

सहसा उनके हृदय में एक भावश्रोत का आविर्भाव हुआ। परमात्मन् ! तू तो सर्वेसर्वा है, अगर ले चलना ही था तो हम में से दोनों को क्यों न ले चला। उस बेचारे पर क्यों वज्रप्रहार ? तेरी नीति कैसी निष्ठुर ! शीघ्र ही वे उस अभागिनी मालकिनी के पास दौड़ आए। उसके साथ-साथ संसार के नाते भर-पेट रोये-पीटे। अन्त में उसे धैर्य दिया, आश्वासन दिया। घबड़ाओ मत, यही तो संसार का नियम है। ऐसी घटनाएँ नित्य रोज़ होती ही रहती हैं। ऐसी असामयिक घटना का कोई हिसाब नहीं, कोई गणना नहीं ? क्या करोगी ? हिम्मत बाँधो। छाती-पत्थर दो। परमात्मा से यही मनाओ कि मृतक की आत्मा को

में अस्त-व्यस्त हो रहा कि उधर से मालिक महोदय ने आकर पुकारा, रमेश, रमेश! पुकार सुनते ही दौड़ कर आया और सलाम कर वहीं पर मौन सा खड़ा रह गया। मालूम हुआ कि उसे काठ मार गया। भगवान जाने क्या बात थी?

उसने लरखराते हुए कहा। सरकार क्या हुक्म होता है? हुज़ूर का आना कैसे हुआ? कौन सी ऐसी ज़रूरत आ पड़ी है।

मालिक ने कड़क कर कहा—तुमको आज तुरत इसी समय 'संकटपुर' जाना होगा। मेरी लड़की की शादी है। इसलिए दूध-दही का प्रबन्ध करना होगा। १० रुपये का दही और २० रुपये का दूध। हां एक बात और, ५० रुपए के घी का भी इन्तज़ाम करना होगा। लेकिन देखो इन सबों का बन्दोबस्त जल्द से जल्द हो जाए। वज़ह है कि समय अब थोड़ा है। अभी रुपये नहीं मिलेंगे। सब का हिसाब पीछे होगा। अपने रुपये से फ़िलहाल खरीद कर जैसे बने पैंचा या उधार ले आओ। तुम्हारा दाम पीछे चुका देंगे। इसका हिसाब पीछे हो लेगा।

रमेश एक काश्तकार था सही। वह बहुत से बीघे खेत भी जोतता था। कितने बीघे नक़दी खेत भी थे लेकिन समय का फेर। तक़दीर का दोष, भाग्य-चक्र का प्रवाह! अब बेचारा क्या करे। उसने गिड़गिड़ा कर कहा—सरकार! 'संकटपुर' में हैजे (Cholera) का बड़ा प्रकोप है। एक तो दुर्भिक्ष, उस पर भी ऐसी प्राणघातक बीमारी। वहाँ

नित्य प्रति-दिन कितने मनुष्य अकाल ही मृत्यु के शिकार हो रहे हैं। मेरी हालत तो इस समय शोचनीय और दयनीय हो रही है। हो सकता है कि यदि मैं वहाँ जाऊँ और उस बीमारी का शिकार बन जाऊँ। अब कृपया आप ही विचार करें कि ऐसी हालत में मेरे असहाय परिवार की क्या दशा होगी?

इस पर मालिक की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी। रमेश के ये दुःख और शोकपूर्ण वचन ने उसके लिए घी का काम किया। मालिक ने गुड़क कर कहा—ससुर बदमाश, अरे! मैं एक भी तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहता..................।

रमेश बेचारा सन्न हो गया। फिर भी हिम्मत बाँध उसने कहा—सरकार खैर और कुछ अपना आदमी दीजिए। इतनी चीजें मैं कैसे-कैसे लाऊँगा?

मालिक ने क्रोध से आँखें लाल कर कहा—वहाँ तुम्हें ही जाना होगा। मेरे पास और कोई आदमी नहीं है। मैं कहाँ से तुम्हें दूँ?

रमेश ने रुपए के लिए प्रार्थना की—सरकार! देखते हैं मेरी हालत? कैसी हो रही है। कृपा करके रुपये दे दें। मैं तो दुःख का मारा, पेट का मारा, मैं हाल से बेहाल हो रहा हूँ। दया करें। रुपये दें, खैर जैसे बने वैसे मैं जाऊँगा। लेकिन इसके पहले मेरी एक प्रार्थना है सुन लीजिये।

इस पर मालिक महोदय ने डपट कर कहा—मैं तुम्हारा अधिक अनुनय-विनय नहीं सुनना चाहता। जाना है तो जाओ, नहीं तो घर से निकाल दूँगा। सबके सबको घर तुरत छोड़ देना पड़ेगा। रमेश ने अन्तिम बार हाथ जोड़ते हुए करुण स्वर में कहा—सरकार ही माँ-बाप हैं। जैसा आप उचित समझें कीजिये। हम तो सरकार का हुक्म मानने के लिये तैयार हैं ही लेकिन देश के नाते, मनुष्य के नाते यही एक विनती है, अर्ज़ है कि हैजे वाले गाँव में कैसे जाऊँ? मेरे बाल-बच्चे की खबर कौन लेगा? बीमारी बहुत जोर पर है।

मालिक ने फिर भी कड़क कर कहा—हरमजादे! तुमने क्या समझ रखा है, सिर्फ माथा-पच्ची करते हो। गत वर्ष भी जब मेरे लड़के की शादी थी और मैंने तुम्हें घर-द्वार साफ-सुथरा करने तथा दही-दूध और घी लाने के लिये कहा था तब भी तुमने आना-कानी की थी। यह तो तुम्हारा बहाना हो गया है।

रमेश ने आर्त्त स्वर में कहा—सरकार आप जानते हैं कि उस समय मेरी स्त्री मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई थी। उसके जीवन का कोई ठिकाना नहीं था कि प्राण-पखेरू किस क्षण उड़ जाते। उस हालत में भी मैंने आपसे बार-बार प्रार्थना की, तो भी नहीं माना। निदान मुझे ईश्वर के भरोसे पर उसे उसी हृदय-विदीर्ण हालत में छोड़ जाना पड़ा और आपकी आज्ञा का सब तरह से पालन भी किया। दूसरी बार भी जब मैं खुद ही ज्वर से पीड़ित

था तब आपने कहा था कि चलो हर लेकर खेत जोतना है। और डर के मारे उस हालत में भी मुझे जाना ही पड़ा। अब क्या कहूँ ?

मालिक ने उसकी एक भी नहीं सुनी और कहा—तुम्हें जाना पड़ेगा। मैं तुम्हारा कहा हुआ एक भी नहीं मानूँगा, जरा भी नहीं सुनूँगा। अब बेचारा रमेश तो किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। दुनियाँ में कोई भी उसे सहारा नहीं जान पड़ा।

यथार्थत: दु:ख से मनुष्य की बुद्धि का ह्रास होता है। दरिद्रता से हृदय पर एक आघात पहुँचता है। संकट की चोट अमिट हो जाती है। प्रतिभा का हनन होता है। अच्छे और बुरे विवेक में संघर्ष छिड़ जाता है। भले-बुरे का ज्ञान जाता रहता है। आत्मा भी खोयी-सी हो जाती है। व्यग्रता बढ़ जाती, व्याकुलता की गति और तूफान सी हो जाती है। चिन्ता शरीर को चिता बना डालती है।

रमेश ने एक कसक के साथ ठण्ढी साँस लेते हुए कहा, अच्छा। मालिक ने समझा कि अब वह जाने के लिए सहमत है। अत: वह चला गया। उसके जाते ही शीघ्र रमेश अपनी जीवन-संगिनी के पास दौड़ गया। सारी बातें कह सुनायीं।

महिला-रत्न ने कहा, प्राणनाथ छोड़िए मोह-माया। जहन्नुम में जाय ऐसा मालिक। उसको नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा।

जीवन का। इसी मार्ग का अवलम्बन कर उनका पारिवारिक जीवन व्यतीत होने लगा।

लड़कियों की शादी तो पहले ही कर चुके थे। केवल रह गये थे वीरेन्द्र, धीरेन्द्र और कर्मेन्द्र तीन लड़के। लड़के सबके सब अब जवान हो गए थे और घर के काम-काज में अपने माता-पिता के सहायक बन गये थे। रमेश और लक्ष्मी को इन लड़कों की शादी की चिन्ता सतत सता रही थी। वे केवल चिन्तित ही नहीं थे बल्कि जी-जान से चेष्टा भी इसके लिए कर रहे थे।

हाँ तो, इसकी वजह थी। वे साफ़ देख रहे थे कि जवानी की मादकता लड़कों के मुखमण्डल पर छिटक रही है। इधर उनके शरीर अन्तरतम दुःख, आघात, प्रत्याघात से दिनों-दिन क्षीण हो रहे थे। तुरन्त ही दुःख के जाल से छुटकारा पाये थे। इस हेतु एक हौसला का उदय होना स्वाभाविक था। एक नये प्रकार की उमंग का अभ्युदय होना नितान्त आवश्यक था। लड़कियों की खोज निरन्तर हो ही रही थी। अस्तु।

इसमें सन्देह नहीं कि रमश न अपने लड़कों के विवाह के लिये सिर-तोड़ कोशिश की मगर उसकी कोशिश फलीभूत न हुई। इसका कारण था एकमात्र उसकी ग़रीबी। वह इतना ग़रीब तो न था कि पेट भर खाना भी प्राप्त न हो पर हाँ ऐसी हालत भी नहीं थी कि बिना काम किये दो-चार दिन बैठ कर

खा सकते। असल बात यह थी कि अपना और परिवार का पेट भरने के लिये सबको लगातार मेहनत करनी पड़ती थी। बस उसकी ग़रीबी ही उस शुभ कार्य में रोड़ा बन रही थी। आज अगर उसकी हालत अच्छी होती, कमाने की चिन्ता से मुक्त होता अथवा अमीरों की लिस्ट में उसका नाम होता तो लड़कों की शादी की कौन बात, अब तक दादा बने होते। लेकिन यहां तो इस समय कोई इतना भी पूछने वाला न था कि भाई तुम किस खेत की मूली हो, सच है दुख का साथी कोई नहीं बनता।

पहले तो दिन भर काम-काज के बाद रमेश प्रायः घर से बाहर एक दो घंटा घूम फिर आया करता था किन्तु आजकल वह सब बंद हो गया था। इसका कारण यही था कि लड़कों के विवाह के बारे में सोच करते-करते वह थक-सा गया था। अब शाम को भोजन के उपरान्त वह घर में चारपाई पर पड़े-पड़े विचारधारा में बहता रहता और इसी उधेड़-बुन में निद्रा देवी की गोद में चला जाता।

रमेश की ऐसी दशा देख कर एक दिन लक्ष्मी ने उससे कहा प्राणनाथ! आप इतने चिन्तित क्यों रहते हैं। पहले तो आप रात के भोजन-उपरान्त इधर-उधर जाया भी करते थे किन्तु, आजकल तो भोजन के बाद शीघ्र चारपाई पर पड़ जाते हैं।

प्रिय! कहाँ जाऊँ, जहाँ जाता था वहां अब कोई आशा

दिखाई नहीं देती। मुँह पर तो सभी कहते हैं कि हम कोशिश कर रहे हैं चिन्ता मत करो, महीने दो महीने के अन्दर ही लड़कों के विवाह ठीक हो जायेंगे, मगर वर्ष बीत गये कुछ भी नहीं हुआ।

लक्ष्मी—तो इसमें उन शुभ चिन्तकों का क्या दोष? यह तो भाग्य की बात है।

रमेश—मैं उनको दोषी नहीं ठहराता किन्तु यह नियम है कि जहाँ जिसका कार्य सिद्ध होता दिखाई नहीं देता, वहाँ जाना अच्छा नहीं लगता। मैं जानता हूँ कि वहाँ जाने में कोई हानि नहीं है परन्तु दिल है कि मानता ही नहीं .....।

अभी रमेश आगे कहना ही चाहता था कि उसके एक पुराने मित्र का आगमन हुआ। वह रमेश के मकान से ५ मील उत्तर की ओर एक छोटे से गांव में रहते थे। पहुँचते ही उन्होंने रमेश को बधाई दी और कहा कि हमारे भाई की एकमात्र ही कन्या है, वह जवान हो चुकी है इसलिये भाई ने मुझे लड़के ठीक करने के लिये भेजा है। चलते समय भाई ने कहा था कि रमेश के बड़े लड़के को भी जरूर देखना, यदि पसन्द आ जाय तो वहीं ठीक कर देना। मैंने एक, दो लड़के और भी देखे लेकिन वीरेन्द्र के तुल्य उनको न पाकर तुम्हारे ही दरवाज़े पर आया हूँ।

रमेश और लक्ष्मी जिनका जीवन सूखे वृक्ष सदृश हो रहा

था उनके लिये तो यह सन्देश बसन्त का काम कर गया। दोनों के दिल हरे-भरे हो गये। दिलोजान से आगन्तुक की सेवा की, और हृदय से धन्यवाद दिया।

दूसरे दिन आगन्तुक चलते समय बोला कि अब देर की गुँजाइश नहीं एक महीने बाद शुक्ल एकादशी के दिन बारात पहुँच जाय। रमेश ने कहा ऐसा ही होगा चिन्ता न करें।

उसी घर में जिसमें कुछ दिन पहले निराशा और उदासीनता छा रही थी, आज खुशी की नदी लहरा रही थी। रमेश बाहर की वस्तुयें, जो विवाह के लिये आवश्यक थीं, जुटाने लगा। इधर लक्ष्मी भी घर के अन्दर बेकार न थी, वह भी अपनी पुत्र-वधू की अगवानी करने के लिये तैयारी करने लगी।

खुशी के दिन जाते दिखाई नहीं देते। वह एकादशी भी आ पहुँची जिस दिन वीरेन्द्र की बारात जानी थी। केवल ५ मील तक ही तो जाना था, इसलिये रमेश ने बारातियों से कह दिया था कि ३ बजे प्रस्थान करना ठीक है। बाराती-लोग ३ बजे चले और ठीक ५ बजे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये।

बारात कोई ज्यादा न थी। सबका उचित प्रबन्ध किया गया और लड़की वालों की तरफ़ से जो सेवा हुई हर एक ने मुक्त स्वर से उसकी प्रशंसा की। इस विषय में अधिक लिखना पाठकों का समय नष्ट करना है। असल बात यह थी कि जितने भी बाराती गये थे सब के सब सन्तुष्ट और प्रसन्न लौटे।

सद्गति दे। परलोक में उसे शान्ति मिले। मेरा सतीत्व और पातिव्रत्य निष्कलंक निभ जाय।

पाठकों ने देखा उन मानवता के सच्चे प्रतीक को? इसी को कहते हैं मनुष्यत्व। इसी को कहते हैं "वसुधैव कुटुम्बकम्।" इसी का नाम है परोपकार की सच्ची भावना। इसी को कहते हैं सहृदयता। इसी का नाम है मनुष्य-हृदय। इसी को कहते हैं सच्चा प्रेम, वास्तविक सहानुभूति और विशद हृदय की शुद्ध और निर्मल अनुभूति।

आह! दैवी प्रकोप का भीषण आक्रमण एक ओर, और सांसारिक अनाचारों, दुराचारों इत्यादि का युद्ध-द्वन्द्व दूसरी ओर। ऐसी कारुणिक दशा में साधारण प्राणी का हृदय टूक-टूक हो जाता लेकिन रमेश और लक्ष्मी तो इसके विपरीत प्रशान्त महासागर सदृश गम्भीर और शान्त रहे। पर्वतराज के समान अटल और अचल।

स्वार्थता के वशीभूत हो, क्रोध के आवेग में, प्रतिशोध की तह में, संसार के उपहासास्पद संकेतों में, जीवनोत्सर्ग करने वाले व्यंगों में, वसुन्धरा की गोद में, प्रतिकार की ज्वाला में, उस दम्पत्ति का हृदय सदा के लिये विलीन हो जाता, भस्मीभूत हो जाता, परन्तु ऐसा होने को क्यों? उनके अन्तःकरण में, उनके अन्तस्तल में एक दैविक आभा थी, एक विशदता थी जो सुख में सुषुप्तावस्था में रहती लेकिन भीषण दुःख का प्रहार होते ही

दुनियाँ को अपने आलोक से आलोकित कर देती, आभा से आभासित कर देती।

स्रष्टा के पुतले धन्य....... । विधाता का विधान आश्चर्य-जनक, अज्ञात, अज्ञेय..... ।

५

उस अत्याचारी मालिक के व्यवहार से लोग काफ़ी जानकार थे। उन लोगों ने देखा था उस बर्त्ताव को, उस अन्याय को जो रमेश और लक्ष्मी के प्रति किये गये थे। उन लोगों के मन में तो हमेशा बदला लेने की एक लहर उठ रही थी; सचमुच में आग धाँय-धाँय सुलग रही थी और यहाँ तक कि वे सब उस हत्यारे की हत्या करने पर तुले हुए थे। लेकिन अब तो कुछ और ही रंग छना।

इस आपत्ति में रमेश और लक्ष्मी की कार्रवाइयों से लोग भली-भाँति परिचित हो गये थे। वे लोग तो विस्मित हो रहे थे। उनके हृदय में इन पति-पत्नी के लिये एक खास स्थान हो गया। वे लोग आदर और श्रद्धा की दृष्टि से इन्हें देखा करते। जब कोई ज़रूरत पड़ती, जब कोई दिक्क़त आती, जब कोई अड़चने अथवा आपत्ति आती तो लोग जल्द उनके पास दौड़ जाते।

इसी का नाम है भाग्य-चक्र। इसी का नाम है परिवर्तन-शील संसार। इसी को कहते हैं भगवान की लीला। रमेश और लक्ष्मी का दुःख अब दूर हो गया। अब उनके सुदिन आ गये। उधर समाज का जो एक प्राणघातक अभिशाप था जैसा कि

पाठक देख चुके हैं, अब उससे उन्हें मुक्ति मिली। इधर लोगों के ख़यालात भी इन युगल मूर्ति के प्रति बदल गये थे। फिर तो बात ही क्या ?

अच्छा, यह बात तो मालूम ही है कि रमेश और लक्ष्मी अपने घर-द्वार को छोड़ कर दूसरी जगह चले गये थे। अब तो वहीं पर बस गये। देवता-सा उनका काम किसके दिल को मोहित न कर देता ? अब तो जीवन-यापन सुचारु रूप से होने लगा।

पाप और पुण्य अपनी-अपनी खूबियाँ रखते हैं। कुकर्म और सुकर्म अपने-अपने लक्ष्य रखते हैं। यह बात अक्सर देखी जाती है कि कोई कितना ही गुणी हो, सर्वप्रतिष्ठित हो लेकिन उसका एक अवगुण, एक दोष भी उसे भस्मीभूत कर सकता है, उसके जीवन को निरर्थक बना दे सकता है। ठीक ऐसे ही कोई कितना ही अयोग्य और नाक़ाबिल है लेकिन उसका एक भी अच्छा कार्य उसके जीवन को सार्थक बना सकता है। यही तो संसार की चाल है।

कुकर्म की प्रगति बहुत तेज़ होती है, इसकी गति बेढंगी होती है। पर सुकर्म की गति निराली, रुकती-सी और कितने अरसे तक चलती रहती है। इसमें तो अनेक विघ्न-बाधाएँ हैं, कितनी रुकावटें हैं। तो रमेश और लक्ष्मी की जीवन-गाथा क्या ? अनाथ को सनाथ बना देना ही एकमात्र ध्येय। यही तो सार है उनके

रमेश ने इस विवाह पर अपनी शक्ति से बाहर खर्च कर डाला। अपने पास भी २-४ सौ जमा था। उसके आलावा २००) कर्ज लेकर भी इस उत्सव पर खर्च कर दिये थे। कर्ज लेते समय लक्ष्मी ने विरोध किया था। वह कहती थी कि महाजन का रुपया खत्म करना आसान काम नहीं, इनका सूद बड़ा बेढब होता है, वह दिन-रात चलता ही रहता है इत्यादि-इत्यादि। परंतु रमेश ने ऐसा कह कर लक्ष्मी को शान्त कर दिया था कि ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते और फिर दूसरे लड़कों को भी कहीं लगाना है या नहीं ? यह पहला लड़का है, यदि इसका विवाह धूम-धाम से न किया तो लोग क्या समझेंगे और अगर इसका प्रभाव अच्छा जमा तो कल तेरे दूसरे लड़के पार लगते हैं।

घर में पतोहू आई तो लक्ष्मी ने भी दिल खोल कर खर्च किया, अब पहले से भोजन भी नित्य स्वादिष्ट बनने लगा, सबके दिल प्रसन्न थे और घर की रौनक कुछ बढ़ी-सी दिखाई देती थी। कभी कभी रमेश और लक्ष्मी अपने दूसरे लड़कों के बारे में उदास होते थे किन्तु इस पतोहू को देख कर उनका दुःख हलका हो जाता था। पतोहू भी सर्वगुण-सम्पन्न थी। अपने पति और सास-ससुर की ओर जो उसका कर्त्तव्य था, उसका उसे पूरा ज्ञान था, सब की यथोचित सेवा-सुश्रूषा करती थी। वह थोड़े ही दिनों में समझ गई थी कि यह घराना अमीर नहीं है इसलिये किसी दिन अगर सूखा

ही मिला तो उसी पर सन्तोष कर लेती। सास-श्वसुर की कभी कोई शिकायत नहीं करती थी।

विवाह के पूरे अढ़ाई वर्ष बाद वीरेन्द्र के एक लड़का हुआ। रमेश और लक्ष्मी ने अपनी जाति के लोगों को इसके उपलक्ष में एक भोज दिया और ग़रीब-गुरबों को भी खाना बाँटा गया, मतलब यह कि अपनी हैसियत से इस अवसर पर भी अधिक खर्च किया। लड़के का पालन-पोषण लाड़-प्यार से होने लगा। लक्ष्मी तो अब फूली नहीं समाती थी। बच्चे को देख कर उसकी "बाँछे खुली जाती थीं", अब उसका अधिक समय तो बच्चे की देख-रेख में ही व्यतीत होने लगा, वह इतनी संलग्न थी कि उसे अपनी स्थिति और भविष्य का कुछ भी ज्ञान न रहा। उसे क्या मालूम कि भाग्य क्या खिलाने वाला है, वह नहीं जानती थी कि उसका कलेजा जो आज इतना उछल रहा है, उसकी हरक़त बन्द होने वाली है।

सावन का महीना था, बादलों से आकाश आच्छादित था, नीली-नीली घटायें ज़ाहिर कर रही थीं कि पानी ज़ोर का होगा, फिर भी वीरेन्द्र अपने बैलों को लेकर खेतों की तरफ़ चल निकला। लक्ष्मी ने बहुत ही समझाया कि कुछ देर ठहर कर पानी का रंग देख लो, दो घंटा देर ही हो जायगी तो क्या हानि है, मगर जवान-दिल में एक खास किस्म का जोश होता है, बूढ़ों की बात का असर जवान-दिल पर कभी-कभी ही होता है। वीरेन्द्र ने कहा कि ये दिन ही ऐसे हैं, अगर पानी

ही देखते रहे तो खेत में बीज पड़ चुका, अतएव वह उमंग से आगे बढ़ा और खेत में पहुँच कर काम करने लगा।

वीरेन्द्र को गये अभी एक घंटा ही हुआ था कि ज़ोरों से वर्षा होने लगी लेकिन वीरन्द्र ने कुछ भी परवाह न की। वह शाम तक वर्षा में ही काम करता रहा। घर वालों को इस बात का किञ्चित्मात्र भी ज्ञान न था कि वीरेन्द्र इतनी देर तक खेत में ही काम कर रहा होगा, वे तो समझते थे कि बैलों को किसी वृक्ष के नीचे खड़ा करके वीरेन्द्र किसी दूसरे के घर में गपशप लड़ा रहा होगा।

शाम को जब वीरेन्द्र घर पहुँचा तो मारे सरदी के उसका शरीर काँप रहा था, पहने हुए वस्त्र से पानी टपक रहा था। मुश्किल से उसने बैलों को बांधा और क्षीण स्वर में लक्ष्मी से कहा—"माँ ! सब काम छोड़ कर पहले बिस्तर लगा दो, मेरा शरीर अकड़ता-सा मालूम होता है।" लक्ष्मी ने बिस्तर लगा दिया और वीरेन्द्र उस पर जा लेटा। लेटते ही उसे बुखार चढ़ आया और बुखार भी ऐसा जो उसके होश को उड़ा ले गया। सारी रात उसे यह मालूम न हुआ कि वह कहाँ है और कैसे है।

दूसरे दिन ८ बजे सबेरे वीरेन्द्र ने आँखें खोलीं तो लक्ष्मी ने, जो उसकी चारपाई के पास ही बैठी थी, धीरे से पूछा—"बेटा [illegible] है ?"

बुखार उतर रहा है माँ, घबड़ाने की ज़रूरत नहीं, थोड़ा पानी देना।

लक्ष्मी ने पानी लाकर दिया। धीरेन्द्र ने पीकर फिर चादर तान ली और चुप-चाप सो रहा। एक घंटे के बाद रमेश ने आकर नाड़ी देखी तो सन्न रह गया। बुखार फिर ज़ोरों पर था, श्वास-निश्वास की गति भी तीव्र थी लेकिन पसीने का नामो-निशान न था। लक्ष्मी ने कमरे में प्रवेश करते हुए पूछा "क्या हाल है ?" रमेश ने कहा, बुखार बढ़ गया है, तुम यहीं बैठो, मैं अभी वैद्य लाता हूँ।

आधे घंटे के अन्दर ही रमेश वैद्य को लेकर पहुँच गया, नाड़ी देख कर वैद्य ने कहा, घबड़ाने की ज़रूरत नहीं, मेरे साथ दूकान पर चलो मैं ४ पुड़ियाँ दूँगा। हर एक-एक घंटे के बाद ठंढे ठंढे पानी से खिलाते रहना, इसी से बुखार उतर जायेगा।

रमेश पुड़ियाँ ले आया और एक एक करके सब खिला दीं परन्तु बुखार न उतरा, तीसरा दिन भी निकल गया, चौथे दिन घर वालों की घबड़ाहट बढ़ गई, सब के सब रोगी की चारपाई के पास जमा हो गये क्योंकि आज लक्षण अच्छे दिखाई न देते थे। अधिक बुखार के कारण रोगी आयँ-बायँ बक रहा था, उसे हवा लग गई थी जिससे सिरसाम हो गया था। शाम तक तो वह मामूली देहाती-उपचार ही करते रह गये लेकिन कुछ भी फ़ायदा न देख कर लक्ष्मी ने रमेश से कहा कि क्यों न किसी

दूसरे वैद्य को ही बुला लाते ? वीरेन्द्र की ससुराल में बाबू मुकुन्द विहारी बड़े अनुभवी और दक्ष सुने जाते हैं, उनको ही बुला लाओ और साथ ही वीरेन्द्र के ससुराल वालों को भी खबर कर आना।

सूर्य्य अस्त हो चुका था, रमेश ने लाठी उठाई और बाबू मुकुन्द बिहारी को लाने चल निकला। राह में अपनी गरीबी पर विचार करता है कि अगर आज कुछ रुपये पास होते तो एक अच्छे डाक्टर को क्यों न बुलाता। घर में कोई जेवर तक भी तो नहीं बचे वे भी सब के सब ऋण दाता की भेंट हो चुके हैं और न कोई अब ऐसा दिखाई देता है जो उधार दे। इन्हीं विचारों में निमग्न होकर वह चला जा रहा था, रात भी काफ़ी अंधेरी थी, रास्ता भी दिखाई न देता था। अभी घर से ३ मील ही आया होगा कि एक जगह उसका पैर फिसल गया और वह पास की एक खाई में जा पड़ा, सिर, नाक और टाँगों में इतनी चोट लगी कि बेचारा उठ न सका, उसने कई अवाजें भी लगाई मगर सावन-महीने की अंधेरी और भयावह रात, आकाश में बादलों का गर्जन, जंगल का रास्ता, न कोई आस न पास, फिर भला उसकी आवाज़ का जवाब दे तो कौन दे ?

जब आधी से कुछ अधिक रात बीत गई तो लक्ष्मी ने अपने दूसरे लड़कों को जगा कर कहा कि तुम्हारे पिता अभी तक नहीं लौटे। न मालूम क्या बात है ? लालटेन लेकर तुम दोनों अभी

जाओ और शीघ्र ही उनको आने को कहो। दोनों लड़के उठ खड़े हुए, लालटेन लेकर पिता को लाने के लिये वे भी घर से चल पड़े।

लड़कों को गये अभी आध घंटा ही हुआ था कि रोगी की हालत खराब होना शुरू हो गई। पहले तो उसका शरीर गर्म था लेकिन अब ठण्ढा हो रहा था और बेहोशी बढ़ रही थी। लक्ष्मी ने ज़ोर से पुकारा—वीरेन्द्र, वीरेन्द्र ! ज़ोर की आवाज़ सुन कर वीरेन्द्र ने आँखें खोलीं और कुछ बोलने की कोशिश की मगर ज़बान बंद पड़ गई थी, वह बोल न सका। उसने हाथ की अंगुली से अपनी औरत की तरफ़ संकेत किया जिससे लक्ष्मी समझ गई कि इसकी ज़िम्मेवारी हमारे ऊपर छोड़ मर रहा है।

लक्ष्मी ने कहा-बेटा घबड़ाओ नहीं, तुम कल अच्छे होते हो। सिवाय मामूली बुखार के और तुम्हें है ही क्या ? औरत भी पास ही बैठी हुई आँखों में मोती लिये पति की ओर देख रही थी। उसकी इच्छा पति से कुछ बोलने को थी किन्तु लज्जावश बोल न सकी।

५ मिनट और गुज़र गये लेकिन वीरेन्द्र की अँगुली उसी तरह खड़ी थी और साथ ही आँखें भी वैसी ही खुली की खुली थीं। लक्ष्मी को डर लगा। वह जाँच करने के लिये वीरेन्द्र के मुख पर झुकी, उधर वह झुकी ही थी कि इधर तेल के न रहने से दीपक का प्रकाश क्षीण होने लगा। वह स्पष्ट रूप से कुछ

भी न देख सकी ! नाड़ी को हाथ लगाया तो उसे घबड़ाहट में कुछ भी पता न लगा। इतने में दीपक शांत हो गया। वह सास-पतोह डर के मारे दीपक लेकर एक पड़ोसी के घर गईं लेकिन तेल वहाँ भी न मिला। यहाँ कोई अमीर घराने तो बसते न थे जिनके घरों में फालतू सामान मौजूद रहते। यह तो किसानों की बस्ती थी जहां खाने तक के तो लाले पड़े थे। खैर दो चार घर फिरने से तेल तो न मिला पर एक घर में दीपक मिला जिसमें कुछ तेल बचा हुआ था। उसी को लेकर वे अपने घर आईं, दीपक जलाया और रोगी की परीक्षा करने पर दोनों पछाड़ खाकर गिर पड़ीं।

धर्मेन्द्र और कर्मेन्द्र जब जा रहे थे तो उन्होंने कराहने की आवाज़ एक पास की खाई से सुनी। प्रकाश पास ले जा कर देखा तो रमेश को औंधे मुँह पड़ा पाया। उन्होंने शीघ्र ही उसे वहाँ से निकाला। एक लड़का वहीं रहा और दूसरे ने पास के गांव में जाकर वहाँ के मुखिया से अपना सब हाल कह सुनाया। मुखिया ने एक चारपाई दी और २ आदमी साथ में दिये, जिनकी सहायता से रमेश अपने मकान पर लाया गया।

मेश की चारपाई घर पहुँची तो घर में हाहाकार मचा हुआ था। बहुत से लोग भी जमा थे। रमेश को भी मामूली होश था, वह रोने धोने की अवाज़ सुन कर मन ही मन समझ गया कि जो कुछ होना था हो चुका है। कुछ आदमियों ने मिल कर

रमेश के घाव धोये और पट्टी की। कुछ लोग लाश को जलाने के लिये स्मशान को ले गये।

आह! ऐसी करामात इस कुदरत की! धिक्! मानव-जीवन तो खिलौना मात्र है! फिर भी लोग तरह-तरह के कुकर्म क्यों करते? नाज़-साज क्यों करते? अभिमान, गर्व, दर्प और घमण्ड क्यों करते? बेईमानी और शैतानी क्यों करते? अत्याचार, दुराचार, अनाचार और व्यभिचार प्रभृति का ऐसा नज़ारा क्यों? उफ्! ऐसी पहेली! विषमता का ऐसा नग्न नृत्य! यही है क्षणभंगुरता!

६

विपत्ति ही मानव जीवन की सच्ची कसौटी है। इस कसौटी पर जो उत्तीर्ण हो जाता है, जो खरा जँचता है उसकी तो बात ही कुछ और हो जाती है। वही तो यथार्थ मनुष्य होने का अधिकारी होता है।

पाठक ही बतलाएँ कि जिस लगातार दैवी आपत्ति, मानसिक आधि, शारीरिक व्याधि, लोकाचार के प्रतिवाद, नाना वध विषाद, वसुन्धरा के केवल अपवाद, उन्मादकों के उन्माद से रमेश और लक्ष्मी निरन्तर गुजर रहे थे वैसी दशा में साधारण जन की क्या दशा होती!

रमेश का एकमात्र आधार 'सत्' था जिसके आश्रय पर आज संसार आश्रित है। अब तो वे परीक्षोत्तीर्ण हो चुके थे। अस्तु! दुर्दिन का अन्त और सुदिन का आरम्भ होना स्वाभाविक था। अपने सत्य-मार्ग पर अचल रह नित्य दिन रमेश काम करने लगा। धीरे-धीरे उनकी दशा सुधरने लगी। काश्तकारी थी ही। रमेश सच्चा कार्यकर्त्ता था ही। संतोषी तो वह प्रथम श्रेणी का था। अस्तु।

रमेश अपने परिवार का पालन-पोषण कर साल में ५०) की

बचत कर लिया करता था। और इसमें से अधिकांश रुपये परोपकार और धर्म के कार्यों में लगा दिया करता था।

भाग्यवश, इसी बीच में कर्मेन्द्र की नौकरी भी लग गयी। १५ रुपये मासिक पर वह एक मिल में मुंशी के स्थान पर नियुक्त किया गया। मिल-मालिक बहुत ही धनाढ्य था। कर्मेन्द्र काम-काज बहुत ही चतुराई और तत्परता से करता था। मिल के अन्य कर्मचारियों के साथ भी उसका बर्त्ताव सराहनीय था। सबके सब उसे तो अपनी आँखों की पुतलियां समझते। वह तो सबके गले का हार हो रहा था।

उन लोगों के जीवन में एक सजीवता और नवीनता का समागम हुआ। रुदन और क्रन्दन का स्थान हास और स्पन्दन ले लिया। उसमें एक जीवन-झांकी के बांकपन का पुट आ पड़ा था और ऐसा क्यों ? चिर सुख के बाद दुःख आने पर प्रथम सुख का यथार्थ अनुभव होता है और दुःख के बाद सुख आने पर वास्तविक आनन्द का आभास होता है।

इसी आनन्द-खुशी, रास-रंग, लीला-क्रीड़ा, नाच-गान, भजन-भाव और पठन-पाठन में उन लोगों का समय व्यतीत हो रहा था। अपने कर्त्तव्यों और व्यवहारों की बदौलत काफ़ी इज्ज़त की प्राप्ति कर ही चुके थे। आदर-सत्कार, मान-सम्मान के विषय में कुछ कहना ही नहीं।

भला, इससे बढ़ कर और भाग्यशाली क्या ? प्रायः देखा

जाता है कि लगातार दुःख और संकट सहते-सहते हृदय वज्र हो जाता है। उस पर वर्षा का भी प्रभाव नहीं पड़ता, शिशिर-ऋतु भी उसे विचलित नहीं कर सकती, आंधी और तूफ़ान भी उसे डिगा नहीं सकते।

हाँ, अगर कोई उसे हिलाने वाला पदार्थ है, कोई उसे प्रभावित और उत्तेजित करने वाली शक्ति है तो सुख। वह सुख जो सदा-सर्वदा रहने वाला नहीं वरन सुख की वे घड़ियाँ जिनमें जीवन में नयी उमंग और नये रंग लाने वाली कड़ियाँ की लड़ियाँ हों। इसी आनन्द-उल्लास और आमोद-प्रमोद प्रभृति शुभ कार्यों में आठ वर्ष बीत गये।

तत्पश्चात् एक दिन रमेश को ऐसा मालूम हुआ कि एक अदृष्ट शक्ति का सहसा आगमन हुआ। विद्युत-छटा-सी छटक कर विलीन हो गयी। भगवान् जाने क्या होने को था ! रमेश और लक्ष्मी में बात-चीत होने लगी। वह एक रहस्य.. ... ... ।

लक्ष्मी ने कहा—पतिदेव ! आपके मुखमण्डल पर उदासीनता और आश्चर्य सूचक चिन्ह क्यों... ... ... ?

रमेश कुछ सहम सा गया, कुछ भौचक्का सा हो गया और कहा—आज एक अदृष्टशक्ति का उद्भव, एक आलोक का आभास मात्र... ... ... ।

कुघड़ी की सूचना... ... ! कुसमय की घटिका आना

लक्ष्मी—आप के वचनों में एक लरखराहट, उदासीनता की झलक मैं देखती हूँ। बात ठीक है ?

रमेश—कैसी झलक ?

लक्ष्मी—आप ही कृपया कहें।

रमेश—तुम कैसे समझ गयी ? एक तो तुम अबला ठहरी, दूसरी बात लगातार दुःख से तुम्हारा हृदय कुछ वर्ष पहले जर्जर हो चुका था। फिर भी तुझ में एक अनोखी सूझ कहाँ से, यह दिव्य आलोक कहाँ से ?

लक्ष्मी—भगवान् की कृपा समझो अथवा पतित्व की आराधना का फल समझो। पातिव्रत्य निभाने का परिणाम समझो।

रमेश—हाँ तो, वह कैसी झलक थी ? ज़रा कहो तो सही।

लक्ष्मी—तुम्हारी आत्मा इस कुबड़ी का सामना करने में हिचक रही है। इस अशुभ लक्षण से दूर रहना चाहती है। इस कुकर्म से कोसों दूर रहना चाहती है। बात भी तो यही है न ?

रमेश—सुललने ! तू धन्य है ! प्राणप्यारी ! तू धन्य है ! तेरी अनोखी सूझ को कौन बूझ सकता है ? यह सब पूर्व जन्म का संस्कार मालूम होता है।

नहीं तो........ ऐसी विकट और हृदय-विदारक परिस्थिति में धर्म की ऐसी कहानी, मातृत्व की ऐसी निर्मल और अनुदार भावना क्यों कर होती।

लक्ष्मी—जो समझो।

रमेश और लक्ष्मी क्षणमात्र के लिए मूकवत् हो गये। ओह! उस समय का दृश्य क्या दृश्य था? दिल दहला देने वाला दृश्य था! ईश्वरीय करामात थी! धर्म की कठिन परीक्षा होने को थी। जीवन में और कुछ देखने को बाकी थे, अवशेष थे। तो फिर भी ऐसा क्यों न होता? ठीक इसी समय में धीरेन्द्र का आगमन होता है। खिन्न हृदय, मुरझाया वदन, क्षीणकाय, आंखें धँसी हुई, गाल पिचके हुए, अनमना सा, लड़खड़ाते हुए माँ बाप से उसने पूछा।

पिता जी, अब क्या करना चाहिए? अब क्या करना होगा?

रमेश—पूछने का तुम्हारा तात्पर्य क्या है, तुम्हारा मक़सद क्या है?

धीरेन्द्र—अभीतक भी आप नहीं समझ सके हैं! ओह! आप भी तो मालूम होता है कि इस दुनियाँ से अलग ही रहते हैं। आप किस विचित्र रंग में रंगे हुए हैं। क्या स्वप्न देखते रहते हैं। मेरी दशा तो ज़रा देखिये। अभी-अभी मैं एक २२ वर्ष का नवयुवक, जिसकी नसों में विशुद्ध रक्त का प्रवाह होना चाहिए था, आँखों में एक प्रकार की गति होनी चाहिए थी; गालों पर गुलाबी, वदन पर मदन का थिरकन मालूम होता लेकिन आप क्या देखते हैं; साफ़-साफ़ प्रकट होता होगा कि मैं पूरे सौ वर्ष का बूढ़ा बना हुआ हूँ। ओह आश्चर्य होता है। ऐसा परिवर्तन!

रमेश—झेंपते हुए बोले। भगवत् की जो मर्जी।

धीरेन्द्र जब बात-चीत कर रहा था तो उसके वचनों में एक कम्पन था। हृदय से एक कसक निकलती-सी मालूम होती। उसके अन्तस्तल में एक वेदना और तड़पन। इसी का नाम है विपत्ति का शिकार, आपत्ति का आखेट होना।

रमेश—पुत्र! वत्स! आखिर क्या किया जाए?

धीरेन्द्र—पिता जी! आप और माता जी क्या बात-चीत कर रहे थे?

रमेश अपनी जीवन-संगिनी की ओर देख कर चुप से रह गये।

धीरेन्द्र—माता! बात क्या है? क्या मैं भी जान सकता हूँ?

लक्ष्मी—बेटा! जान सकते हो लेकिन देखना, संकट में धर्म की अवहेलना न हो .....।

धीरेन्द्र—धर्म! धर्म क्या?

लक्ष्मी – वही एकमात्र आधार जिस पर संसार आश्रित है। वही एकमात्र सत्ताधीश प्रभु की अक्षय शक्ति जो तीनों काल में सदा-सर्वदा चिरस्थायी रहने वाली है। वही धर्म जिसके बल पर आज संसार टिका हुआ है। वही धर्म जो आज भी नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं को सीमित रखने वाला है नहीं तो क्या से क्या हो जाता!

धीरेन्द्र अवाक् रह गया। उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। ओह! भगवान की महिमा अपार! उनकी लीला विचित्र और उलझनपूर्ण! खैर हिम्मत बाँध कर फिर उसने पूछा। माँ—जीवन-नौका भव-सागर से कैसे पार लगेगी?

लक्ष्मी—अंधकार ही अंधकार तो मालूम होता है, बेटा। निराशा ही निराशा नज़र आती है। क्या कहूँ?

धीरेन्द्र—अच्छा तुम्हारे और पिता जी के बीच में क्या वार्त्तालाप हो रहा था, माँ। ज़रा कहो तो। शायद उसमें कोई मार्ग देख पड़े। कोई सुलझने का उपाय शायद निकल आए।

लक्ष्मी अब तो हिचकिचाहट में पड़ गयी। अब उसके सामने आलोक की जगह में अंधकार छा गया। शायद विधि के विषम विधान की फिर भी बारी आयी हो।

अब वह झूठ बोलती तो कैसे। खैर, लक्ष्मी ने आँखें मिंजते हुए कहा। बेटा! वह तो एक झिलमिलाहट थी, एक अशुभ घड़ी की शायद सूचना थी, कुघड़ी का आगमन होने को था। देखें क्या होता है! धैर्यपूर्वक हमलोग प्रतीक्षा तो करें।

पाठक सचमुच में बड़ी उत्सुकता में होंगे। वास्तव में यहाँ एक गूढ़ पहेली-सी मालूम होती है। यथार्थतः एक विचित्र रहस्य-सा प्रतीत होता है। आखिर वह पहेली, वह रहस्य, वह झिलमिलाहट, वह अशुभ घटिका की सूचना क्या थी? उस कुटिल काल की गति तो निराली थी।

रमेश और लक्ष्मी का परिवार-शकट अपनी लीक पर पूर्णतया सम्यक् रूप से चला जा रहा था लेकिन काल-चक्र का प्रवाह रुकने को कब ! यह तो सदैव अविश्रान्त और अबाध रूप से प्रवाहित होता ही रहता है। इस प्रवाह म बहुविधि जंगम और स्थावर, जड़-चेतन, जलचर, थलचर प्रभृति प्राणियों को प्रवाहित और निमज्जित होना किसने रोका ? अर्थात् किसी ने नहीं। इसी को तो प्राकृतिक नियम कहते हैं। अस्तु, रमेश के परिवार का जीवन-छकड़ा भी बीच ही में अटक गया ! जिसे पाठक पीछे अवगत कर मर्माहत हो जायेंगे।

पाठकवृन्द ! नियति की नीति नियमित एवं परिमित नहीं। इसका विधान इतना कटु है कि पटु से पटु भी इससे वंचित नहीं रह सकते। कोई भी प्राणी इसका अपवाद नहीं हो सकता।

आखिर हुआ क्या ? काश, नियति तेरी भित्ति कितनी बीहड़, रहस्यमय, दोषागार और दुष्कांक्षी है। इसका लांघ जाना कठिन ही नहीं असम्भव है। इसके लिये हृदय की जरूरत है और ऐसा-वैसा हृदय नहीं, जिस पर सदियों से वज्र-प्रहार हुआ हो, आघात और घात हुआ हो। वही तो इस संकट से, इस उलझन से सुलझने को क्षमता रखेगा। उसी में तो निभाने की लियाक़त होगी, वही तो उसका सामना कर सकता है, नहीं तो दूसरे में इतनी हिम्मत कहाँ, इतनी धीरता और क्षमता कहाँ ! कातर हृदय तो शीघ्र ही विदीर्ण हो जायगा।

खैर, उस निठुर और बेरहम निथति का भीषण प्रहार फिर भी रमेश और लक्ष्मी पर आ धमका। उन लोगों का सिर एक-ब-एक ठनका। मुख-मण्डल पर दुःख-चिन्ह झलक पड़े। आँखों में आँसू आ गये। टकटकी लग गयी। पलकें तन गयीं। अक-बका से गये। बोली नहीं निकल सकी। हृदय में कंपन हो आया। रोंगटे खड़े हो गये। स्वेद भी बाहर आता दिखाई पड़ा। उस समय का दृश्य सचमुच निठुर से निठुर हृदय को भी दहला देने वाला, रुला देने वाला, छाती को फाड़ देने वाला था ······।

काश, वह प्रहार! प्रहार क्या वज्र-प्रहार! दुःख-पहाड़ का प्रहार रमेश पर टूट पड़ा, द्रुतगति से आ धमका। उसका एक-मात्र पौत्र 'लाल' जो ज्येष्ठ पुत्र वीरेन्द्र की विधवा, अभागिनी का था चल बसा! अन्तक ने उसे अन्त कर डाला। बीमार भी न पड़ा, कुछ दर्द-पीड़ा भी नहीं हुई और ऐसी करुण दशा! विष-मता का ऐसा भीषण साम्राज्य! नियन्ता का ऐसा कठोर विधान! हन्ता का ऐसा अनहोनी हनन!

उफ़! बसा हुआ चमन उजड़ गया। खिली हुई कलियाँ मुरझा गयीं। लहलही और डहडही बेली लतिका उस निष्ठुर प्रकृति-तूफ़ान से रौंद डाली गयी। उसकी कोमलता का कुछ भी मूल्य उस पिशाचिनी के सामने नहीं ठहरा। ज़रा भी उसकी कीमत आँकती तो प्रकृति इतना दुस्साहस नहीं करती। आज रमेश के अरमान पर पानी फिर गया। उसकी आशा अब केवल

निराशा मात्र रही। बुढ़ापे का सहारा अन्तक-प्रहार से प्रहारित हो गया !

ओह ! ऐसी दुर्घटना को क्या कहूँ, दुर्दैव का दोष कहूँ, जीवन की सारता समझो अथवा मरण की निस्सारता। प्राणिमात्र के कुटेव में इसकी गणना करूँ या प्रकृति के भीषण और दुर्दमनीय प्रकोप में। इसको क्या कहूँ ? जीवन का अभिशाप या वरदान ? पाठक ही निर्णय करें। कैसी झलक थी, कौन-सा रहस्य था, कौन सी पहेली थी, अब वाचकगण ही समझ लें। आह ! अवाकता का एकमात्र राज्य, मौनता का दिवालापन ………।

रमेश और लक्ष्मी अपने जीवन के बोझ वहन करने में असमर्थ से प्रतीत हो रहे थे। ऐसी हृदय-विदारक दशा में क्या करें क्या न करें, इसी विचार-श्रोत में ओत-प्रोत हो रहे थे।

रमेश ऊर्ध्वश्वाँस खींचते हुए सहसा कह उठा—काल की कुटिल गति धन्य है। कौन अनुमान कर सकता है कि जगत् में क्या होने को है। क्या होगा, इसकी विवेचना करना सर्वथा असम्भव है। पल-पल में, क्षण-क्षण में क्या है, उसी मायाविनी प्रकृति की एक झांकी मात्र। उस सत्ताधीश की सतर्कता में किसकी कब चली ? उस बलीयसी प्रकृति नटी के सम्मुख भला किसी की दाल कब गली ?

अभी-अभी जो दुःख-द्वन्द्व, वेदना-पीड़ा से कराह रहा है, मरण की प्रतीक्षा में है, जीवन का तो पूछना ही व्यर्थ, निरा व्यर्थ।

इतना होते हुए भी यदि उस नटी की सहानुभूति हो जाए, उसकी कृपा-दृष्टि हो जाय, तो फिर भी उजड़ा हुआ घर बस सकता है, पंचवटी का समागम हो सकता है, साकेत-पुरी का उदय हो सकता है।

भगवन् ! धर्म, सत्य और प्रेम का साथी तू ही है। निराशा की आशा तू ही है। तेरा ही सहाय्य पाकर एक निर्धन ऐश्वर्य-शाली हो सकता है। एक अकिंचन कुबेर बन सकता है। तुझे ही पाकर एक कुकर्मी सुकर्मी बन सकता है, एक समाज-पतित समाजोद्धारक बन सकता है। तेरी गति विचित्र, तेरी माया सर्वकला से परे। ओह ! किसकी पहुँच है कि तेरे निकट पहुँचे। अन्ततः 'नेति-नेति' के सिवा तुम्हारे प्रति और शब्द ही क्या ?

७

पाठक यह तो जानते ही हैं कि रमेश और लक्ष्मी मालिक महोदय के अत्याचार और अमानुषिक व्यवहार से घर-द्वार छोड़ कर परिवार सहित दूसरी जगह जा बसे थे। मालिक ने तो अत्याचार का षड्यन्त्र रचा था। वह चाहता था कि रमेश का सर्वनाश हो, उसका सत्यानाश हो। लेकिन इसके विपरीत जो दूसरे के लिए कुआँ खोदता है उसमें पहले खुद गिरता है इस लोकोक्ति के अनुसार वे ही महानुभाव संकट के शिकार हुए और अकाल ही काल के गाल में चले गए। इस अकाल मृत्यु पर रमेश को दया आ गई थी और भिन्न-भिन्न प्रकार के विरोध और बहकाव के होते हुए भी उसने मृतक आत्मा की मदद की थी। तहेदिल से ईश्वर से प्रार्थना की थी कि भगवान्! उसके दुःखी और विदीर्ण हृदय वाले जीवित परिवार को सान्त्वना दे।

भला ऐसा उपकार और भलाई कर क्या रमेश आशा नहीं करता कि उस दिवंगत मालिक परिवार की हमदर्दी मेरे साथ रहेगी? क्या कभी ऐसी बात हो सकती है कि मनुष्य हो कर उपकार को भूल जाए। रमेश को तो पूर्ण विश्वास था। खैर समय आने पर इसकी परीक्षा भी हो जायेगी।

काल की गति विचित्र है। इसका अनुमान कौन कर सकता है। इसकी कल्पना करना ज़रा टेढ़ी खीर है। किस क्षण में क्या होने को है, यह तो बिलकुल एक रहस्य-सा प्रतीत होता है।

अच्छा तो कांग्रस-मिनिस्ट्री (कांग्रेस मन्त्रिमण्डल) की तूती बोल रही थी। घर-घर में इसके नारे लगाये जा रहे थे। बच्चा बच्चा के मुँह से भी इन्क्लाब का नारा सुनाई पड़ रहा था। घर के कोने कोने में इसकी ध्वनि गूँज रही थी। प्रान्त-प्रान्त में सभा-सोसाइटियाँ की जा रही थीं। देश ही में नहीं विदेश में भी कांग्रेस संस्था की सत्ता मानी जा रही थी। इसकी गणना भी इतिहास में विशेष स्थान रखती थी।

कांग्रेस-संस्था तो अगुआ का काम कर रही थी। छोटी-मोटी और भी कितनी संस्थाएँ काम कर रही थीं। भारत के आठ प्रान्तों में कांग्रेस का बोलबाला था। सब जगह कांग्रेस-मंत्रि-मण्डल स्थापित हो गया था। देश में एक अजब तरह का जोश था, एक नयी उमंग थी, सर्वत्र एक लहर-सी दौड़ रही थी।

भिन्न-भिन्न दलबन्दियाँ अपने अपने प्रभुत्व जमाने पर तुली हुई थीं। कहीं किसान-सभा का ज़ोर था, तो कहीं मज़दूर सभा का शोर। कहीं जमीन्दार आंदोलन की गूँज थी तो कहीं किसान राज्य का स्वप्न था। कहीं पूँजीवादी की बोल थी तो कहीं साम्यवादी की होड़ थी। कहीं रायटिस्ट की बुलन्दबाज़ी थी तो कहीं रेडिकल की तैयारी थी। कहीं मुसलिम-लीग का हुँकार

था तो कहीं राष्ट्रीयता के नाम पर मर मिटने वालों की पुकार थी। चारों ओर से एक गजब दृश्य छन गया था। अब ऐसी हालत में भला किसमें जोश नहीं आता, किसमें उत्साह नहीं होता, किसकी बाहें नहीं फड़क उठतीं, किसकी भौंहें टेढ़ी नहीं होतीं? यह तो एक युग था, एक समय था जो मुर्दा-दिल में भी जान फूँक देता और बात की कियदंश में ऐसी निकली। चाहे इसका परिणाम भले ही कुछ हो।

लोगों का खून खौल उठा था। नारे क्या थे, रक्त को उबालने वाले; दिल को दहलाने वाले, नये युग की नींव डालने वाले। इस नारे में कितने जीवन-किनारे से न्यारे हो गये। कितने आत्माहुति देकर अमर हो गये, कितने आज दुःख, शोक और संकट के मारे अहर्निश कराह रहे हैं। सचमुच नारे ये नहीं थे, ये तो जीवन के 'लाले' थे।

ठीक है दुर्दिन आने पर बुद्धि काम नहीं करती। अक्ल चकरा जाती है। बेचारा रमेश भी इस धारा में प्रवाहित होने लगा। इस तरंग से वह तरंगित होने से नहीं बचा। उसके मन में अजीब तरह की लहर उठी, जिसको दबाना उसके लिए मुश्किल जान पड़ा। ऐसा क्यों न हो, उसको तो और दुर्दिन देखने थे।

ज़मीन्दार-किसान आन्दोलन का तो खुला बाजार लग गया। जहाँ कहीं देखें, वा सुनें बस केवल अपने ही अपने राग

अलाप रहे थे। एक ओर अगर किसान लोग अपनी सभाएँ कर रहे थे तो दूसरी ओर जमीन्दार भी चुप नहीं थे। वे लोग तो किसानों से भी अधिक इस विषाक्त वातावरण से उत्तेजित और प्रभावित हो रहे थे। ऐसा तो था वह समय।

समयानुसार कांग्रेस मिनिस्ट्री के कार्य-कलाप की तालिका भी प्रचुर परिमाण में वितरण होने लगी। विहार टेनेन्सी एक्ट को तो एक इलहदा स्थान हो गया। संशोधित और निश्चित कानून रखे गये। करीब-करीब सात-आठ वर्ष की छोड़ी हुई बकाश्त ज़मीन पर रैयत कब्जा कर सकता है। मालिकों को चाहिये कि न्यायानुसार कानूनन रैयतों से बाकी-बकाया लेकर बकाश्त ज़मीन उन्हीं को दे दें। बुकलेट और पैम्फलेट की तो बाज़ार में बाढ़-सी आ गयी।

लोगों ने सोचा, भाई इससे बढ़ कर और समय क्या आवेगा, यह तो सतयुग है। ईश्वर की कृपा इससे बढ़ कर क्या होगी? गरीबों का उद्धार होगा, दीन-दुखियों की रक्षा होगी। दरिद्रों की दरिद्रता का नाश होगा। देश में साम्यवाद की लहर फैलेगी। साम्प्रदायिकता का नाश होगा, राष्ट्रीयता का प्रचार होगा। जाति-पाँति का भेद-भाव हमेशा के लिए मिट जायेगा। इससे बढ़ कर सुअवसर और क्या?

रमेश इस वातावरण से अपने को अछूता न रख सका। उसने भी सोचा कि क्यों न मैं चलूँ अपने प्रथम खेत पर

कब्जा कर लूँ। कानूनन तो मेरा अधिकार होना ही चाहिए। कांग्रेस सरकार है, इसी की आज्ञानुसार सबको काम करना पड़ेगा। इसके हुक्म की अवहेलना करना क्या कोई आसान बात है?

दूसरी बात यह भी है कि उस मालिक के साथ मैंने सहानुभूति दिखाई थी। उसके दुःख में मैंने यथाशक्ति मदद की थी। शोकसन्तप्त परिवार को आश्वासन दिया था। दुःख का सबसे बढ़ कर मैं ही उनके परिवार का मित्र था, सहायक था। अतः मेरे प्रति उन लोगों का ख्याल भी अच्छा ही होना चाहिये। आशा भी है कि वे लोग मेरे लिए भरसक कोई बात उठा नहीं रखेंगे।

इसी बिचार में रमेश उथल-पुथल हो रहा था कि किसान-राज्य का स्वप्न देखने वाले मनुष्यों का दिनेश की अध्यक्षता में वहाँ आगमन हुआ। उन लोगों ने रमेश को बिचार-मग्न देख पूछा—भाई रमेश! इतना गंभीर क्यों देख पड़ते हो? क्या कुछ चिन्ता तो नहीं?

रमेश ने सिर हिला कर कहा—हाँ भाई! कुछ चिन्ता तो जरूर कर रहा हूँ?

दिनेश ने पूछा—वह कैसी चिन्ता है, रमेश?

रमेश हिचकते हुए धीरे से बोला—क्या कहूँ? मैं तो

दुविधा में हूँ। कहूँ कि न कहूँ।

दिनेश—वाह रमेश ! कहूँ कि न कहूँ ! ऐसा क्यों ? कहो और जरूर कहो, देखो देर हो रही है।

रमेश—अच्छा कह देता हूँ ! मैं तो पहले दूसरी जगह रहता था और वहाँ से अब यहाँ आ बसा हूँ। आज सात वर्ष बीत रहे हैं। वहाँ पर मेरी काफ़ी मौरूसी ज़मीन है। अगर वह फिर मिल जाय तो मैं अपनी हालत सुधार लूँ। मेरे दुर्दिन शीघ्र ही भाग जाएँ लेकिन डर लगता है। भले न मालिक कोई लकड़ लगा दे। आर्थिक दशा जैसी मेरी अभी है सो तो आपको मालूम ही है। इसी सोच में मैं पड़ा हुआ हूँ।

दिनेश—रमेश ! इस सोच को क्या सोच कहते हो। यह तो केवल साग-मूली है। छोड़ो चिन्ता, त्यागो सोच। ज़रा-ज़रा-सी बात के लिये इतना चिन्तित, इतनी उदासी। भाई ! अच्छी तरह जानते हो कि किसान-राज्य की स्थापना होने वाली है। जो कमायेगा वही खायेगा, जिसका हक है, उसी की वह चीज़ होगी। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत से अब काम नहीं चलेगा। बहुत अत्याचार हो चुका है, बहुत व्यभिचार हो चुका है, अब ये सब होने को नहीं हैं।

शीघ्र चलो और उस खेत पर अपना अधिकार जमा लो। कौन मालिक और ज़मीन्दार उसके नज़दीक आवेंगे। उनकी हिम्मत थोड़े पड़ेगी।

रमेश आखिर तो पढ़ा-लिखा हुआ आदमी ठहरा। संसार की चालों से पूर्ण परिचित था। संकट की घड़ियाँ देख ही चुका था। उन्नति और अवनति के दिन गिन चुका था। तरह-तरह की आँधी और महान् से महानतर तूफ़ान भी देख चुका था। परन्तु 'करम-गति टारे कबहुँ न टरे' के सामने आखिर वह करता ही क्या ?

फलतः दिनेश की बातों में उसे पूर्ण विश्वास हो गया। उसने मन ही मन सोचा, दिनेश इतने मनुष्यों का नेता है, आधुनिक आवहवा में पला हुआ नेता ! मुझे भी तो इसकी जानकारी है ही। चलूँ उसी ज़मीन पर कब्जा तो कर लूँ ! पीछे देखा जायगा।

दिनेश—हाँ भाई रमेश ! अब विलम्ब किस बात का ?

रमेश—खेत पर अधिकार करने के लिए कुछ तैयारी की भी ज़रूरत है न ?

दिनेश—तैयारी ! तैयारी कैसी ?

रमेश—धन की तैयारी ! जन की तैयारी !

दिनेश—ओह ! रुपए-पैसे की बात पीछे रहने दो। वह ज़मीन्दार मुक़दमा थोड़े लड़ने जायगा। अरे भाई ! यह तो कानूनन चीज़ है।

इसमें फिर एतराज कैसा ? अगर नहीं मानेगा तो पीछे देखा जायगा। उसको कह सुनकर मिला लिया जायगा। कुछ ले-

दे कर तै-तमान हो जायगा।

रमेश ने फिर पूछा—अच्छा तो जन की तैयारी तो आवश्यक है।

दिनेश—क्या फौजदारी की बारी आयगी ?

रमेश—हो सकता है। समय का रुख-रवैया बदलता-सा मालूम होता है। देश में वैमनस्यता की आग सब घड़ी धधक रही है। फिर भी ऐसा होने में सन्देह क्यों ?

दिनेश—अच्छा तो इसकी तैयारी पूरी तरह कर लेनी चाहिए। लेकिन एक बात, खेत पर कब्जा करने के लिये केवल दो ही आदमी, एक हर और दो बैल वगैरह ले चलना चाहिए। अधिक मनुष्य अथवा जमात जाने की आवश्यकता नहीं। हाँ, कतिपय मनुष्य पूरे सामान के साथ अगल-बगल में प्रतिद्वन्दी की चाल को देखते रहेंगे। मौका पड़ने पर मालूम नहीं कि क्या करना पड़े ?

रमेश—अच्छा भाई दिनेश ! ये सब भार-भीड़ आपके ऊपर है। मैं तो आप के ही बल पर कूदता हूँ। इसलिये जो उचित जँचे, जल्दी-जल्दी तैयारी कर लीजिये। आप नेता ठहरे ही आपके लिये तो यह बाँये हाथ का खेल है। और मेरे लिये तो शायद "लोहे का चना चबाना है।"

दिनेश—हाँ, हाँ, मैं इसका प्रबन्ध तुरन्त कर देता हूँ। इसके लिये आप बेफिक्र रहें। मैं आस-पास की बस्तियों में एक बार

घूम आऊँ। सारा ब्योरा कह सुनाऊँ।

बस अब क्या, सब के सब राजी हो गए और ग्रामवासियों ने कहा कि शीघ्र ही इस काम को करना चाहिए।

दिनेश की तो अब बन आयी। बस अब क्या घड़ी-घण्टे में पूरी तैयारी हो गयी। खुशी के मारे दिनेश रमेश के पास दौड़ गया और कहा कि अब देर क्या ? यही तो शुभ मुहूर्त्त है।

रमेश—अच्छा तब मैं क्या करूं ? अनुनय-विनय करने से तो वह मालिक मानेगा नहीं ? उसका तो एक ही जवाब, "अदालत का दरवाजा खटखटाना" है।

दिनेश—रमेश ! आप अपने मित्र दुःखेश के साथ हर-बैल लेकर जाइये और जाकर उस खेत पर अपना अधिकार जमा लीजिए। अगर कोई रुकावट होगी, कोई अड़चन आयेगी व कोई संकट होगा तो मैं निर्दिष्ट किए हुए मनुष्यों के साथ आकर यथाशक्ति तुम्हारी मदद करूँगा। कोई चिन्ता न करो।

दूषित वायु से जमीन्दार लोग भी प्रभावित हो ही चुके थे। उनके कान भी हमेशा खड़े ही रहते थे। सदा डर बना हुआ रहता था कि किस घड़ी में क्या होता है। इसी की खोज में तो वे लोग भी रहा करते थे। किसी न किसी तरह इन बातों की गंध पहले ही उस मालिक के कान में भी पहुँच चुकी थी। अतः वह भी पीछे क्यों रहता। अपनी पूरी तैयारी के साथ वह भी

डटा ही हुआ था। वह तो सोचता था कि ऐसे समय में खेत दे देना क्या है साँप को दूध पिलाना है।

होनी वश रमेश दिनेश के कथनानुसार अपने मित्र दुःखेश के साथ जल्द ही खेत पर अधिकार करने के लिए चल पड़ा। वहाँ पहुँच कर खेत जोतने लगा। निकट ही जमीन्दार साहेब का घर था। दूसरी बात कि इसकी बू भी पहले ही उनके पास पहुँच चुकी थी। तीसरी बात जमीन्दारी प्रथा का कट्टर पोषक जो किसान के शोणित-शोषण कर आश्रित था, भला क्यों कर पीछे रहता। इन कार्रवाइयों को देखकर तो उनकी आँखों में पहले ही से खून उबल आया था। फिर अब पूछना ही क्या ?

भला जमीन्दार का खून ठहरा। उसकी गर्मी बर्दाश्त हो तो कैसे। उस पर भी रियायों की बढ़ती ? तैयारी तो पहले से थी ही, खेत पर लड़ाई के पूरे सामान के साथ आ धमका। उसने कड़क कर कहा, अरे रमेश तेरी इतनी हिम्मत, तू किसके बहकावे में पड़ गया ? तू तो खेत छोड़ कर कभी का भाग चुका था। यह जमीन यद्यपि तेरी मौरूसी थी, पर मैंने तो इसे बकाश्त करवा ली है। अब तेरा इस पर कब्जा ही क्या रहा ? अलग कर हर-बैल, जा अपने घर, नहीं तो देखते हो, आज नरक की निशेनी से पार होना पड़ेगा।

रमेश ने गिड़गिड़ा कर कहा— मालिक, क्या आप मुझको भूल गए ? मैं तो वही रमेश हूँ जिसकी आपत्तिकाल में आप

तथा आपके परिवार के साथ पूरी सहानुभूति रही थी। न्यायत: यह मेरी मौरूसी ज़मीन है। मैं इधर-उधर भटक रहा हूँ। अत: कृपया मुझे दे दें जिससे जीवन का सहारा मिले।

मालिक—मैं तुम्हारी एक भी नहीं सुनूँगा। मैं जैसा कहता हूँ वैसा करो नहीं तो अच्छा नहीं होगा। जल्दी से कहो, क्या राय है ? कहा मानोगे कि नहीं मानोगे।

रमेश—सरकार, मैं कैसे अपनी चीज़ को छोड़ दूँ ? दूसरे को आप यह खेत न देकर मुझे ही दे दें तो क्या आपत्ति है। मैं आपका पुराना असामी ठहरा। मैं आपका रैयत ठहरा, फिर ऐसा क्यों ?

मालिक—सो मैं नहीं सुनूँगा। आज खेतिहर कहलाने आया है ? तुम जाते हो कि नहीं ?

रमेश अकबका सा गया और कुछ कहना ही चाहता था कि धड़ाम से एक लाठी उसके सिर पर पड़ी।

दु:खों का मारा निर्बल रमेश उस चोट को सह न सका, फलत: वह ढनमना कर ज़मीन पर चीखते हुए गिर पड़ा। ऐसी करुण चीख सुन कर दिनेश और लोगों के साथ घटनास्थल पर शीघ्र ही आ धमका और मारपीट शुरू हो गयी। इतने में कुछ लोग और आ गए। वहाँ पर एक ठसाठस भीड़ लग गयी। अन्त में लोगों ने उन्हें समझा-बुझा कर शान्त कर दिया। उन दोनों ने भी अपने-अपने घर की राह ली।

निदान भीड़ अब धीरे-धीरे फटने लगी। अब मालिक ने अदालत की राह ली। उसने जाकर पुलिस को पहले सूचना दी। उसने कहा कि दारोगा साहेब देखिए ज्यादती उन हरमजादों, रैयायों की। आज हवा बह चली है तो उसी में वे भी बह गये। मेरी हालत देखिये तो सही। बोलते-बोलते रुक गया..........।

दारोगा ने पूछा—बात क्या है ?

मालिक—हुजूर देखिए। मेरा खेत है उस पर रमेश अपना अधिकार जतलाता है और कहता है कि जैसे बनेगा वैसे मैं जोतूँगा अवश्य। मैं मना करता था पर माना नहीं और उलटे मुझ पर ही लाठी चला दी। कितने जख्मी हो गये और अस्पताल में पड़े कराह रहे हैं। एक बड़ी जमायत के साथ वह आया जिसमें बहुत ही मनुष्य थे। जैसे मैंने उसे खेत जोतने से रोका कि मार-पीट शुरू हो गयी। ओह ! ऐसी बदमाशी, ऐसी सीना-जोरी ! कैसा जमाना है।

दारोगा—आँख लाल करते और दाँत कड़कड़ाते हुए बोला—अच्छा, देखूँगा। रुपए-पैसे की गर्मी बहुत हो गयी है। अब वह जमाना नहीं। अपनी शान अब आपको छोड़ना होगा। आज कौन सरकार है ? क्या आप इसी में फूले हुए हैं कि आपके पास बहुत धन है ? इतनी धांधली क्यों ? अपनी नीति को छोड़ दीजिए नहीं तो अब विनाश के सिवाय और है ही क्या ? कैसे

तो बहुत सिरियस (शख्त) है। कितने रुपए भूल जायेंगे। रुपए की बात कौन कहे, यहाँ तो जान की बारी है। फाँसी है, फाँसी !

मालिक अब अवाक् रह गया। उसने ठण्ढी साँस ली। उफ ! सर्वनाश ………… …।

दारोगा शीघ्र ही घटनास्थल पर पुलिसों के साथ आ पहुँचा। पूरी जाँच-पड़ताल (Enquiry) की।

दारोगा ने डपट कर पूछा —ज़मीन्दार जी ! क्या राय होती है ? मैं रिपोर्ट दाखिल कर दूँ। मुकदमा तो बहुत ही खतरनाक है। किसी को छुटकारा मिलना असम्भव-सा जान पड़ता है।

ज़मीन्दार ने कहा—हुजूर, हो सके तो मुझे बचाने की दया दर्शावें। मेरी इज्ज़त भी गयी, मुसीबत भी झेली, जन भी चला गया। अब तो अपनी जान की भी बारी आ गयी है। ऐसी हालत में आप ही तो माँ-बाप हैं, ईश्वर हैं हुजूर, और मैं क्या कहूँ। जहाँतक बनेगा आप की खिद्मत करूँगा।

दारोगा ने फिर पूछा—तब आपके कहने का मतलब क्या ? साफ़-साफ़ कह दीजिए।

मालिक—मतलब तो यही है कि मैं मुकदमे से बेदाग बच जाऊँ तो ·· ·········। लेकिन मेरी जीत अवश्य हो। और रिपोर्ट ऐसी रहे कि वे हरामज़ादे रैयत, रेयाया बेतरह फँस जायें। कैद की कोठरियों की वे हवा खायें। कितने को दामुल भेजवा दीजिये। आप तो परमात्मा ही ठहरे। फिर बात क्या ?

दारोगा ने उसे नीचे पैर से सिर तक देखते हुए कहा—यहाँ नादिरशाही नहीं चलेगी। बेरहम कहीं का, ऐसी हैवानियत और उस पर भी ऐसे मनसूबे ! जाओ, दूर हो, मेरे सामने से। मैं देख लूँगा।

मालिक अकबका गया। चुपचाप हो गया। अक-बका कर कुछ कहना ही चाहता था कि रैयत की पार्टी भी आ धमकी। रमेश, दिनेश और दुःखेश इनमें मुख्य थे। वे लोग तो दारोगा साहेब के पास देर से पहुँचे। कारण ज़मीन्दार पार्टी ने पहले ही पुलिस को इस दुर्घटना के मुतल्लिक सारी बातें कह दी थीं। अब तो ज़मीन्दार मुद्दई और रैयत मुद्दालह हुए।

फिर बेचारे ग़रीब किसान के पास इतने रुपए कहाँ कि पहले जाकर अदालत का मुँह देखते। वे लोग तो सबके सब कंगाल हो रहे थे। अत्याचारों, अन्यायों और दुर्व्यवहारों से दरिद्र हो रहे थे। जीवन भी तो बोझ हो रहा था। कट-मरने के सिवाय और दूसरा उपाय ही क्या ? अपने अधिकार के लिए प्राण की आहुति देना तो लोगों ने अपना कर्त्तव्य और धर्म समझ रखा था।

दारोगा ने अनमना-सा होकर रैयतों से पूछा—बात क्या है ? मामला क्या है ?

दिनेश ने कहा—हुज़ूर ! हम लोग तो लूट लिए गए। तबाह कर डाले गए। केवल जान नहीं निकली, सब दुर्दशा हो गई है।

दारोगा ने कहा –कहो, कहो, असली बात क्या है ?

दिनेश—बात तो यही है कि रमेश की मौरूसी जमीन थी। आपके सामने जो जमींदार बाबू बैठे हुए हैं इन्हीं की तावेदारी में वह बेचारा बसा हुआ था। मालिक और असामी का, जमींदार और किसान के आंदोलन से तो आप पूर्णत: परिचित हैं। नित्य रोज़ इस प्रकार के सैकड़ों मुकद्दमे आप देखा करते हैं। उसी चक्र-चाल में हमलोग भी पड़ गये। अपने-अपने हक के लिए हमलोग जान देने पर उद्दत हो गये। अपने अपने अधिकार के लिये सब कोई लड़ता-झगड़ता है। इसमें सीनाज़ोरी की बात ही क्या ?

दारोगा ने कहा—अच्छा चुप रहो। बहुत हुआ। फिर उसने रमेश से पूछा—रमेश! तुम कहो, क्या बात है ?

रमेश ने नम्रता से कहा—हुजूर, क्या कहूँ... ... ...? ऐसा अन्याय, ऐसा दुराचार, ऐसी हैवानियत! ओह! हृदय काँप उठता है, रोएँ खड़े हो जाते हैं। सब माल लेकर ये ज़मीन्दार महोदय रसीद तक नहीं देते। माँगिये तो तरह-तरह के फ़र्जी मुकदमे का शिकार होइए। बेगारी तो इनकी मोल ली हुई है। खेत और ज़मीन तो इनकी मोलाई हुई है। दिन-रात जाड़ा-बरसात, गर्मी और धूप में हाड़तोड़ परिश्रम कर अपना जीवन हम किसान बर्बाद करें और गुलछर्रे ये उड़ायें। हम सबों को भर-पेट फुटहा-चना मुअस्सर नहीं, तन ढाँकने के लि

कपड़े भी नहीं, सोने के लिए बिस्तरे भी नहीं, रहने के लिए वही नरक की गन्दगी। उफ़! ऐसी विषमता, ऐसा घोर अन्याय। आह! क्या करूँ ……… … ‥।

दारोगा ने ऐसी दर्दनाक बात सुनकर दाँतों तले अंगुली दबा ली। कुछ समय के बाद फिर रमेश से पूछा—अच्छा, इस दुर्घटना के विषय में अपनी राय ज़ाहिर तो करो। सचमुच यह पैशाचिकता है, यह मनुष्यता के नाम पर राक्षसी नाच हो रहा है। तब तो आज की दुनियाँ भाँति-भाँति के दुःख-दर्द और अनाचारों से कराह रही है। सचमुच में मुझे बड़ी दया आती है, इन बेचारे दीन, कुचील किसानों को देख कर। मैं तो मुलाज़िम ठहरा, मैं क्या करूँ, कोई वश नहीं चलता। रमेश ने भी समझा कि दारोगा साहेब तो भलेमानुष हैं, यह तो देवता समान मालूम होते हैं। तक़दीर अच्छी मालूम हो रही है। इनसे सारी बातें सच्ची-सच्ची क्यों न कह दूँ?

दुर्दिन के मारे हुए रमेश की बुद्धि भी काम नहीं कर रही थी, वह तो हतबुद्धि हो रहा था। अतः सारा ब्योरा आदि से अन्त तक उसने दारोगा साहब से कह दिया। मैं अपने मौरूसी खेत को छोड़ कर भाग गया था। कई एक वर्ष बीत गये। फिर लोगों ने और विशेषकर दिनेश ने मुझे आग्रह किया कि ऐसे अच्छे मौके पर आप पीछे क्यों? अपनी मौरूसी जायदाद पर कब्जा क्यों नहीं करते? देख रहे हैं कैसा आन्दोलन चल रहा है, कैसी

हवा बह रही है। फिर ऐसा मौका आयेगा थोड़े। कितने बिना जायदाद वाले जायदाद वाले हो गये, बिना खेत और जोत वाले खेतिहर और काश्तकार बन गये। आप पीछे क्यों ?

क्या कहूँ ? इसी हवा में, इसी तूफान में, इसी लहर में मैं भी बह चला, जिसकी हालत दारोगा साहब, अपनी आँखों देख रहे हैं। काश ! जीवन ··· ··· ··· ··· ।

दारोगा तो रमेश की सारी बातें सुन आश्चर्य में पड़ गया। उसकी सच्चाई पर तो विस्मय-विमुग्ध हो गया। आनन्द की सीमा न रही और कहा कि अच्छा, तब क्या करें।

रमेश—मैं क्या कहूँ ? हुजूर को जो उचित जँचे कीजिए। जो न्याय और धर्म करने के लिए कहे, कीजिए। और मैं क्या कहूँ। ठण्ढी आह लेते हुए रमेश ने कहा।

दारोगा—अच्छा तो जाओ ? मैं अपनी डायरी दाखिल कर देता हूँ। रमेश ने सलाम करते हुए दारोगा साहेब से कहा—हुजूर मैं इन्साफ चाहता हूँ। मैं तो सर्वदा से सत्य पर रहा हूँ और भविष्य में भी रहना चाहता हूँ। देखें ईश्वर की क्या मर्जी होती है ! इतना कह उसने घर की राह ली।

घर पर जाकर देखा कि सर्वत्र उदासीनता ही उदासीनता फैली हुई है। एक तो दैवी भीषण प्रहार, दूसरा खोटा भाग्य, तीसरा धनाभाव, अब मैं ऐसी दशा में क्या करूँ ! धन है ही

नहीं, जन भी नहीं रहे। अब घर भी तो मालूम होता है कि भूतों का बसेरा हो गया है। लगातार दुःख, संकट, वेदना और आपत्ति से तो शरीर भी क्षीण होता जा रहा है।

ओह ! कर्मेन्द्र की तनख्वाह भी १५ रुपये मासिक है, उसका भी कौन ठिकाना। देश का रुख बदला ही हुआ है। मिल में या जहाँ देखते हैं वहीं तो उथल-पुथल, एक अजब तरह की लहर फैली हुई है, इस पर जीवन-घातक दूसरी समस्या जो सिर पर आ मड़रा रही है, नेत्रों के सामने आ नाच रही है। कैसे दिन निभेगा। देखें, निकट भविष्य में कौन-कौन सी बला आती हैं।

८

हाँ तो, पाठकवृन्द, लक्ष्मी के हृदय-निर्गत भावों का, विशुद्ध और विशद विचारों का, मानव-जीवन के गूढ़ रहस्यों का, आत्मा की सच्ची अनुभूति और देश की विभूति का, लोकाचार के विचार का, मानवता-मनन के हनन का आलोक तो निसन्देह प्राप्त कर चुके होंगे। अब फिर अवशेष क्या ?

रमेश और लक्ष्मी चिन्ता-मग्न थे। वे लोग काल-विशेष के लिए साधना-हीन हो रहे थे। अब तो जीवन भारवत् हो रहा था, उन्होंने संसार को फिर एक बार असार कह कर पुकारा। समय विशेष के लिए मौन.........।

लक्ष्मी ने कहा—पतिदेव ! ऐसी विषम स्थिति में खिन्नता की झलक क्यों ? हतोत्साह की सूचना क्यों ? ईश्वर फिर भी एक महान और निष्ठुर परीक्षक के रूप में आ खड़ा हुआ है। आज उस परीक्षा-कसौटी पर उत्तीर्ण होना ही तो मनुष्यता है, धीरता है, और है जीवन का सच्चा सार।

रमेश का हृदय ,उत्साह और दैवी आलोक से आप्लावित हो गया। उसने गद्-गद् स्वर में कहा—जीवन-सहचरी ! अब क्या करना चाहिये ?

लक्ष्मी ने कहा—नाथ ! अब तो किसी तरह इस पिशाच स्वरूप मुकदमे से मुक्ति पा ही नहीं सकते । इसमें अब उलझना ही कर्त्तव्य मालूम होता है । यही तो अन्तिम परीक्षा जान पड़ती है ।

रमेश—रुपए-पैसे का तो नितान्त अभाव ही अभाव है ।

लक्ष्मी—अपने सहायकों और शुभचिन्तकों आदि से सहायता माँगने की आवश्यकता है, पतिदेव !

मेश—अच्छा, शीघ्र ही काम शुरू कर देना चाहिए ।

इस प्रकार वे दोनों सोच-विचार और विचार-विमर्श में अस्त-व्यस्त हो ही रहे थे कि निकट ही में बैठे हुए दिनेश, योगेन्द्र, महावीर, शंकर, संकटमोचन, महेश, दुःखेश और प्रवेश तथा राम प्रताप आदि मनुष्यों ने एक स्वर से कहा—भाई रमेश ! मलीनता और उदासीनता का लेशमात्र स्थान भी अपने हृदय में मत दें । मृत्यु तो प्राणियों के लिए अनिवार्य है । मृत्यु से डरना केवल कायरता है । यह तो अवश्यम्भावी है ।

फिर भी हमलोग अपने कर्त्तव्य पर, अपने धर्म पर मर ही मिटें तो इसमें शोक किस बात का, पश्चात्ताप किस बात का ? सर्वप्रथम यथाशक्ति हमलोग अपना कर्त्तव्य तो कर लें तो फिर पीछे जो होनीहारी है सो तो हो ही कर रहेगी ।

ठीक इसी बीच में वारण्ट आया कि योगेन्द्र, महावीर शंकर, क्लेश, संकटमोचन, दुःखेश, दिनेश, महेश, प्रवेश, राम प्रताप, भरत और महेन्द्र तथा रमेश को फौजदारी दफ़ा १४४

और ३७६ के अनुसार ता० १०-२-३८ को ठीक १०½ बजे S. D. O. की कचहरी में हाज़िर होना पड़ेगा। वारएट तामिल कर दिया गया। सबके सब विस्मय-विमुग्ध हो गए। उन लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। उन लोगों को इसकी तनिक भी आशा नहीं थी कि एक ही बार ऐसा वज्र प्रहार होगा। इतनी जाल-फ़रेबी होगी। क्लेश, संकटमोचन, रामप्रताप और महेश तो बिल्कुल निर्दोष थे लेकिन दैविक चक्र-चाल में वे भी पड़ गये। अब चिन्ता और अफ़सोस करने से होता ही क्या? अस्तु।

रमेश ने एकत्रित मनुष्यों से कहा—बन्धुगण! कल के विषय में आपलोगों की क्या राय है? वारएट तो आप लोग देख ही चुके हैं। तीन-तीन दफ़ा हैं, हो सकता है कि जीवन की भी बारी आ जाय। अतः इसके लिए विशेष तैयारी की आवश्यकता है। आपलोग समुचित प्रबन्ध करें।

दिनेश तो मुखिया ही ठहरे। उनके प्रति कृषकों की श्रद्धा भी अटूट थी। उनके हृदय में दिनेश के प्रति प्रतिष्ठा का एक विशेष स्थान था। अतएव दिनेश ने उनलोगों से अपील की कि वर्तमान स्थिति से आपलोग तो पूर्णतया परिचित हैं। क्या होने जा रहा है, यह भी आप लोगों को अच्छी तरह मालूम है। अधिक कहने की तो ज़रूरत ही नहीं जान पड़ती। वारएट जो आया है, वह भी आपलोगों को भलीभाँति मालूम ही है। केवल अब एक रात बच रही है। कल १०½ बजे कचहरी में हाज़िर

होना है। न जाने क्या होगा।

अत: इसके लिए विशेष रुपये की भी तो आवश्यकता है। हो सकता है कि ज़मानत की ज़रूरत पड़े। इसके लिये भी एक सुखी-सम्पन्न व्यक्ति की आवश्यकता है। एक-दो दफ़े की बात कौन कहे, तीन-तीन दफ़े हैं। दिनेश ने उपस्थित जनों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हुए कहा कि ज़रा आप लोग भी तो बतलाएँ कि इस विकट कार्य के लिये योग्य पुरुष कौन है।

एकत्रित लोगों ने एक स्वर से कहा—गुणेश इस कार्य के लिये सब तरह से योग्य और समर्थ व्यक्ति हैं। उन्हीं को कहा जाय। हमलोग शीघ्र ही चलें और उनसे सानुरोध अनुनय-विनय करें कि कृपया इस विकट संकट-काल में हाथ बटाएँ। अस्तु।

सबके सब शीघ्र ही उठ खड़े हुए। कुछ ही फ़ासले पर उनका घर था। वे तो गुणेश थे ही, भला पीछे क्यों रहते और विशेषकर ऐसी दशा में तो उनकी परीक्षा की बारी आयी हुई थी। उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

सबके सब ज्यों-त्यों करके रात बिताए। कुछ रात शेष रहने पर ही उठे और चक्र-चाल में चढ़ने-उतरने लगे। प्रातः-काल हुआ। इधर-उधर दौड़-धूप होने लगी। अब तो वह १०½ बजे की घटिका सिर पर भड़रा रही थी। लोगों के हृदय में

एक कसक थी। खैर, भारी दिल के साथ सबके सब कचहरी पहुँचे। उस समय का नजारा........।

१०½ की घंटी बजी। सबके सब उत्सुकतापूर्वक 'उस पुकार' की प्रतीक्षा कर रहे थे। अन्ततः पुकार पहुँची। S. D. O. के कोर्ट में उचित प्रबन्धों के साथ पहुँचे। दोषियों को S. D. O. ने सूचित किया कि आपलोगों पर तीन 'केस' हैं। रमेश, दिनेश, दुःखेश, रामप्रताप, संकटमोचन, योगेन्द्र, महावीर, शंकर, महेश, प्रवेश, भरत और महेन्द्र दोषी हैं। अतएव ये सब हरास्त में लिये जायँ और नहीं तो कोई इन सबों के लिए २०००० रुपए की जमानत देने वाला खड़ा हो। निकट ही में गुणेश खड़े थे। उन्होंने जमानत देना स्वीकार कर लिया।

क्रोधावेश में पड़ मनुष्य क्या से क्या नहीं कर देता। आन-बान में मर-मिटना ही तो मानवता नहीं है। मानवता है धैर्य-पूर्वक किसी कार्य को प्रतिपादन करने में, मनुष्यता है दूरदर्शिता से काम लेने में, भलीभांति सोच-विचार कर किसी काम में हाथ डालने में, धीरता, सहनशीलता, विवेक और अवसरवादिता से काम करने में। काल की गति सदा अनुपेक्षणीय है।

इधर तो जीवन-संग्राम का तूफान तीव्रगति से उथल-पुथल मचा रहा था। उधर एक अजब ही नजारा छना। वह क्या? पाठकगण आगे देखेंगे। इसी का तो नाम विपत्ति है, आपत्ति

कहूँ या दुर्दिन........!

हाँ, आपलोग तो पूर्णतया परिचित हैं कि रमेश का छोटा पुत्र कर्मेन्द्र एक मिल में १५) मासिक पर कर्मचारी था। स्मरण करें उस समय को। कैसा था वह समय! कैसी थीं वे घड़ियां जिनमें अनेकों ने दुःख के आंसू-मोती की लड़ियां पिरोये। वे दिन कैसे थे जिनमें असंख्य घर-हीन और धन-हीन हो किसी अन्य पथ के पथिक बने। आह! कर्मेन्द्र भी इसीमें बह चला। युग-युग की भूक-भूक करती हुई आग सहसा धधक उठी। इसमें एक विशेष प्रकार की ज्वाला थी। एक तन्मयता थी, इस ऊर्ध्व शिखा का लेखा ही भिन्न था।

कर्मचारियों का चिर-उपेक्षित काल शीघ्र ही आ पहुँचा। कर्मचारी-नेता ने मन ही मन कहा—ओह! आज तो स्वर्ण-युग का अंकुर मिलता है। चारों ओर सजीवता ही सजीवता दीख पड़ती है। सबमें संगठन का पठन-पाठन, एकता की विशदता में सत्ता और महत्ता परिलक्षित होती हैं तो फिर हम मजदूर पीछे क्यों? अस्तु।

नवयुवक का रक्त ठहरा। गर्मी की अधिकता का होना अनिवार्य था। जमाने का फेर था। समय का रुख कुछ और ही था। उसके शरीर में जोश की लहर विद्युत-सी कौंध गयी। तुरत ही सब मजदूरों को एकत्रित कर संगठन का बिगुल बजाते हुए वर्षों के अभावों और दुर्व्यवहारों को सुधारने के लिए मिल-

मालिक से प्रार्थना की गई लेकिन व्यर्थ। वे मालिक महोदय तो सदा से समर्थ थे, तो उन ग़रीबों की अपील (प्रार्थना) व्यर्थ क्यों न हो। उनकी मांगों को ठुकरा देना तो बायें हाथ का खेल समझते थे। अस्तु।

हड़ताल का तो करताल एक-ब-एक झनझना उठा। सैकड़ों कर्मचारी अपने नेता की अध्यक्षता में खुले दिल से हाथ बँटाये। अरसों और दिनों की बात कौन कहे, सप्ताहों और महीनों तक हड़ताल लगातार चलती ही रही। कितनी हानि हुई मिल-मालिक की। कितना नुकसान हुआ मिल-कर्मचारियों का। इसका हिसाब लगाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। कितने तो अपनी नौकरी से हाथ धो बैठे। कितने चहारदीवारी की हवा खाये। कितने दर-दर भटकते रहे, कितने गली-गली खाक छानते फिरे। आखिर होने को क्या ?

फलत: कर्मेन्द्र भी इस चंगुल में ऐसे फँसा कि उसकी नौकरी को कौन कहे, वह तो जेल का मेहमान बना। कारागार का प्रहार बना। दुर्दिन का शिकार बना, जीवन का संहार बना और अन्तत: कर्मों का उपहार बना। रमेश और लक्ष्मी के जीवन का प्रवाहक न होकर वह तो दुर्दैव का संदेशवाहक बना।

पाठक! ठीक जिस दिन रमेश पर यह दर्दनाक वाकयात आ धमके उसी दिन कर्मेन्द्र भी जेल-यात्री औरों के साथ बन गया। कारण फूट की आग तो पहले ही से सुलग रही थी जेल-यात्रा ही बाकी थी।

रमेश ने उन दोषियों से कहा - खैर, जीवन में तो अभिशाप ही अभिशाप है तो वरदान कहाँ। हमलोगों की आशा तो और भी क़ाफ़ूर हो गई, सचमुच में इस पर पाला पड़ गया। अब तो हमलोगों के हाथ-पैर भी टूटने ही टूटने पर हैं पर किया क्या जाय। हिम्मत हार कर बैठ जाना तो हृदय की निर्बलता है। कुसमय का वीर और धीर हृदय से सामना करना ही हमलोगों का ध्येय होना चाहिए। इसी में तो हमलोगों के जीवन का एक-मात्र सार है। अखिलेश्वर साक्षी हैं। चलें, अब भविष्य की प्रतीक्षा करें। २०००० रु० की जमानत पर सबके सब छोड़ दिए गये।

मुकदमा शुरू हो गया। रमेश की आर्थिक दशा जसी थी उससे तो पाठक अच्छी तरह परिचित ही हैं। संसार में अभी सार है, नहीं तो इसका अस्तित्व कब्र का अन्त हो जाता। S. D. O. के कोर्ट में मुकदमा दाखिल हुआ। दोनों ओर से बड़े-बड़े अनुभवी वकील रखे गये। एक ओर रुपए का बल था तो दूसरी ओर 'धर्म' और 'सत्' का स्वर्ण सहयोग। चार तारीखें गुज़र गईं। काफ़ी बहस भी की गई।

S. D. O. को रमेश के विषय मे एक कौतुहल-सा मालूम हुआ। उन्होंने उससे प्रश्न किया—रमेश ! असली बात क्या है। क्या तुम सच्ची-सच्ची बातें कह सकते हो ?

रमेश—हुज़ूर ! मैं क्या कहूँ और क्या न कहूँ ? गरीब और

दीन-हीन की सुनता है कौन ? लेकिन हाँ, आप तो न्यायाधीश हैं, समदर्शी हैं। आपके हृदय में सबों के लिए समान स्थान है। सत्य और असत्य के सच्चे पारखी हैं। धर्म के सहचर और पोषक और अधर्म के विनाशक हैं। अच्छा, हुजूर की आज्ञा हो तो मैं सारी बातें कह सुनाऊँ।

S. D. O. ने कहा—खुशी से तुम सुना सकते हो।

रमेश—बात ऐसी है हुजूर कि मैं सात-आठ वर्ष पहले वर्तमान मालिक के पिता के समय उनकी रैयत था। तरह-तरह के दुःख और आपत्ति से सताए जाने पर मैं वहाँ से दूसरी जगह परिवार समेत भाग गया। एक तो दैविक प्रहार का सामना करना और दूसरे मृतक मालिक का अमानुषिक व्यवहार। अतः मैं बिल्कुल ऊब गया था। नाकोंदम हो गया था। तब मेरी स्त्री ने कहा कि ऐसी हालत में यहाँ रहना कदापि अच्छा नहीं है। जहाँ पायेंगे मजदूरी कर पेट चला लेंगे।

ठीक उसी समय ज़मीन्दार-किसान आन्दोलन ज़ोर-शोर से चल रहा था। इस दूषित वायु मे मैं भी बह चला। दिनेश किसानों का अधिनायक था। उसी के कथनानुसार मैं भी बौखला उठा। मालिक महोदय से अपने मौरूसी खेत के लिए मैंने उज्र-माज़ुर किया लेकिन बेकार। मैं बहकावे में पड़ गया। मेरा ज्येष्ठ पुत्र तो परलोक का मेहमान कबका हो चुका था। सबसे छोटा पुत्र कर्मेन्द्र मिल-हड़ताल के चलते जेल-यात्री बना।

अभागिनी विधवा का एकमात्र 'लाल' तो पहले ही अकाल ही काल-कवलित हो गया। मैं कहाँ तक कहूँ सरकार! दुःख ही दुःख तो हैं। ओह! धर्म.........!

S. D. O. ने कहा—बस, रमेश बस। माजरा क्या है, मैं अच्छी तरह समझ गया। अब अधिक बक-झक करने की आवश्यकता नहीं। जाओ। जो होना होगा सो होगा। मन ही मन कह उठा, ओह! विचित्रता

इस मुकदमे के विषय में बहस-मुबाहसा, तर्क-वितर्क की अधिक व्याख्या करना, विस्तृत विश्लेषण करना क्या है पाठकों का समय नष्ट करना है। अतः इसका परिणाम, अन्तिम फैसला क्या हुआ, पाठक ज़रा गौर से सुनें, धीरतापूर्वक समझें और गम्भीरतापूर्वक मनन करें।

हाँ तो, फैसले का दिन तेज़ी से आ धमका। लोगों में एक विशेष प्रकार की लगन थी, एक चहल-पहल थी। आज मुकदमे की हार-जीत के साथ-साथ कितनों के जीवन सीमित और परिमित होने को जा रहे थे। दुःख-सुख, योग-वियोग, हर्ष-शोक, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, कुकृत-सुकृत और मान-अपमान आदि प्रतिद्वन्दियों में पारस्परिक युद्ध-संघर्ष छिड़ा हुआ था।

एक बात और। वाचक तो उन बेचारे कृषकों की करुणापूर्ण दशा से अच्छी तरह परिचित हैं। शोचनीय आर्थिक दशा के सबब से तो वे बेचारे हताश, निराश, खिन्न और मलीन हो रहे

थे। इधर-उधर से कुछ उधार-पैंचा, कुछ भिक्षाटन और चन्दा इत्यादि से इतने दिन तक ज्यों-त्यों करके आ रहे थे। तब क्या ? केवल उन्हें भरोसा था ईश्वर का, 'सत्' का, 'धर्म' का और अपने- अपने कर्त्तव्य का पूर्ण विश्वास था।

ठीक १२॥ बजे की घंटी बजी। रमेश को उक्त कोर्ट के चपरासी ने पुकारा। कचहरी ठसाठस भर गयी। फैसले की प्रतीक्षा थी। S. D. O ने कहा—रमेश ! न्यायत: वह मौरूसी खेत तुम्हारा है। इसलिए उस पर तुम्हारा सब तरह से अधिकार हुआ। हाँ, तुमने बलात् उस खेत पर अधिकार जतलाया जो कानूनत: अन्याय है। अतएव इस अन्याय के फलस्वरूप दिनेश को दो वर्ष की कड़ी सजा और शेष तुम्हारे ग्यारह आदमियों को जिसमें तुम भी एक हो डेढ़-डेढ़ वर्ष की कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी अन्यथा दिनेश को ५०० रुपए और तुम ग्यारहों को पौने तीन-तीन सौ रुपए जुर्माना के रूप में देने पड़ेंगे।

वे किसान बेचारे तो निर्धन, धन-हीन ठहरे। रुपए का तो वे स्वप्न भी नहीं देखा करते और देते कहां से। फलत: सहर्ष उन लोगों ने जेल जाना स्वीकार कर लिया। पर कुछ हिचकते हुए रमेश ने S. D. O. से प्रार्थना की—हुजूर की आज्ञा हो तो अभी मैं दु:खी और शोकाहत परिवार को धैर्य देकर कल्ह ठीक ११½ बजे सरकार की शरण में अवश्य आ जाऊं।

S. D. O. ने उसकी सत्यता पर मुग्ध होकर कहा—अच्छा, जाओ। रमेश ने घर जाकर सारी बातें अपनी धर्मपत्नी को कह सुनायीं। सुनते ही उसके मानस-निर्झर से अविरल और अबाध विचार-प्रवाह प्रवाहित होने लगे। एक ऊर्ध्व श्वास लेते हुए उसने कहा—काश, इस नश्वर जगत् में ऐसी विषमता! इस क्षणभंगुर संसार में ऐसी बेढवता! ईश्वर की उपस्थिति में भी ऐसी मक्कारी, परमात्मा के एक अन्य अंश के साथ ऐसा पाशविक व्यवहार, मानवता का इतना भीषण ह्रास, पैशाचिक वृत्ति का इतना दौरदौरा, दीन-दुखियों के साथ ऐसा घोर अन्याय, पशु से भी बढ़कर निकृष्ट और हेय समझना जीवन-दाता के साथ ऐसी धोखेबाजी, सच्चे देश-सेवक के प्रति ऐसा हृदय-विदारक बर्त्ताव! गति समझ में नहीं आती। ऐसी निराली चाल क्यों। लानत है, ऐसे कुत्सित विचार को। धिक्कार है, स्वार्थ-साधन के पोषकों को, शोषण करने का ही जिसका एकमात्र ध्येय है उस नराधाम को नरक में भी ठौर मिलना घोर पाप है।

वह बाहुबल किस काम का जो पीड़ितों को संकट से छुड़ाने में काम न आवे। जो निर्बलों और दुर्बलों के लिये हितकर न हो, जो गर्त में गिरे हुए को उठाने के कार्य में न आवे।

वह धन किस काम का जो दुःखी-दीन के हितार्थ काम में न आवे। जिससे अनाथ और असहाय को मदद न मिल सके, जो शुभ कार्यों में व्यवहित न हो सके, जो मर्य्यादा, कुल, प्रतिष्ठा और धर्म को सुरक्षित न रख सके।

वह बुद्धि कैसी जिससे भले-बुरे का भान न हो, दुःखी-सुखी का ज्ञान न हो, सत्य-असत्या की पहिचान न हो, देश-गौरव का ध्यान न हो, कुकर्म-सुकर्म का विचार न हो, जिसमें केवल मदान्धता, स्वार्थता की गंध हो अपनापन का मूल हो, अन्य के लिये शूल हो वह तो बुद्धि नहीं कुबुद्धि है, दुर्बुद्धि है !

वह प्रभुता किस काम की जिसमें केवल लघुता ही लघुता हो, जिसमें पड़-पीड़न की तन्मयता हो, जिसमें पर-नाशक की आह हो, जिसमें सभ्यता का दिवालापन हो, जिसमें मनुष्यता का अधोपतन हो, जिसमें दानवता के पुष्टीकरण का अंश हो।

वह न्याय क्या न्याय है ? जिसमें स्पष्टीकरण की भावना बिल्कुल ही नहीं, यथोचित विषयों पर विचार-विमर्श न कर चाँदी के जूते लगने पर पथ-भ्रष्ट हो जाना क्या न्याय है ? कदापि नहीं। उफ़ .... ।

अन्ततः लक्ष्मी ने धीरतापूर्वक कहा—प्राणनाथ ! परमात्मा की लीला अपरम्पार है। उनकी माया रहस्यमयी है। उनकी शक्ति अपरिमेय है। क्या से क्या क्षणमात्र में ही कर गुजारते हैं। क्या मुझे कभी स्वप्न में भी आशा थी कि ऐसी बारी पलट जायगी। दुर्दैव का मारा अलग, दुर्दिन का सताया हुआ अलग, प्राकृतिक घात-प्रत्याघात एक ओर, सामाजिक हास-उपहास दूसरी ओर, जीवन का तो प्रश्न ही नहीं था केवल मरण ही मरण तो दृष्टिगत होता था। ओह !

इसके विपरीत इस क्षण में आप क्या देखते हैं ? क्या यह

उज्ज्वल उदाहरण नहीं है कि 'सत्' की ही सर्वत्र विजय होती है ? क्या इससे पूर्णतया स्पष्ट नहीं है कि 'धर्म' ही सर्वेसर्वा है। क्या आपको सुस्पष्ट नहीं होता कि 'प्रेम' और श्रद्धा ही ईश्वर प्राप्ति का साधन है। भगवान की गति अविगत है, निराली है, विस्मयजनक है।

ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में नहीं तो क्या से क्या हो जाता। जीवन-दीप तो कब का बुझ और शान्त हो जाता पर उस अखिलेश्वर ने ही बचा लिया। अच्छा तो, आपको डेढ़ वर्ष की कड़ी सजा मिली है। आप तो जेल के मेहमान होने जा रहे हैं और मैं क्या करूँ ? क्या आज्ञा होती है।

रमेश—वीर-हृदया ! आज्ञा ! आज्ञा क्या ? वही करना जो एक अडिग पातिव्रत के लिए सब प्रकार से उचित है। 'सत्' से कभी अडिग नहीं होना, धर्म-पथ से च्युत न होना, प्रेम-मार्ग से विचलित न होना, प्रत्येक प्राणी में समदर्शिता का भाव दरसाना, ईश्वरांश का अवलोकन करना, मातृत्व का औदार्य और 'पृथ्वी-मात्र को कुटुम्ब समझना' बस ये ही तुम्हारे परम कर्त्तव्य हैं जिनका पालन प्राणाहूति कर भी करना। मैं अब अपना कर्त्तव्य पालन करूँ, ११॥ बजे जेल-यात्रा तो करनी है न ············। बस इतना कह कर रमेश वहाँ से उठा और सीधा अदालत की तरफ चल पड़ा, ठीक ११॥ बजे वहाँ पहुँच गया और तब एक सिपाही उसे जेल में ले गया।

९

हम पहिले कह आये हैं कि रमेश की लड़की सुखिया का विवाह जब एक अच्छे धनी घराने में हुआ और फिर वर भी एक योग्य व्यक्ति था जो दूसरों का दुःख देख कर सहायता के लिये तैयार हो जाता था, तो फिर क्या वजह थी कि उनके अपने सास-ससुर कष्ट की घड़ियाँ गिनते रहे। बात यह थी कि जब करुणेश की शादी हो गई और अपनी स्त्री सुखिया को अपने घर ले आया तो कुछ दिन शान्ति से गुजरे, यद्यपि उस के लिये शान्ति थी मगर समाजवादी कहाँ चुप थे। वे तो समय-समय पर आलोचना कर ही देते थे।

करुणेश के पिता इतने वृद्ध तो न थे कि उनसे कुछ करते धरते न बनता हो। अगरचे इस समय ६० से कम न थे फिर भी शरीर में स्फूर्ति थी, दो-चार कोस पैदल सफर कर सकते थे। असल बात यह थी कि छोटेपन से शरीर सम्भाला हुआ था जो इस समय काम दे रहा था।

एक दिन करुणेश के पिता योंही पैदल एक आसामी के घर जा निकले जो उनके मकान से २ मील के फासले पर था।

आसामी के घर पर ३-४ आदमी बैठे हुए यही आलोचना कर रहे थे कि करुणेश के पिता ने रमेश की लड़की के साथ करुणेश का विवाह करके अपने माननीय नाम में कलंक लगा लिया है।

एक आदमी—भाई बात तो सत्य है लेकिन अभी तक किसी की हिम्मत तो नहीं हुई जो उनका खुलमखुला विरोध करे हालांकि विवाह हुए दो महीने गुज़र गए हैं।

दूसरा आदमी—विरोध क्यों नहीं करते, हम तो नहीं डरते, यह दूसरी बात है कि कुछ ग़रीब आदमी दब कर चुप रहें। न तो हम उनकी ज़मीन्दारी में बसते हैं और न हमको उनकी सहायता की ही ज़रूरत है।

तीसरा आदमी—अजी हमें बहुत जल्द एक सभा करनी चाहिये जिसमें इस विषय का फैसला हो जाय, नहीं तो इनकी देखा देखी सभी पाप पर उतारू हो सकते हैं।

अभी इनकी आलोचना चल ही रही थी कि करुणेश के पिता ने फाटक के पास खड़े होकर अपने आसामी को आवाज़ लगाई। आवाज सुनते ही उसका दम घुटने लगा, दूसरे आदमी भी उठ कर बाहर चले आये और उन्होंने अपने-अपने घर की राह ली। आसामी फाटक पर आया और हाथ जोड़ते हुए करुणेश के पिता को अन्दर ले गया। एक पलंग पर सफेद चादर बिछा कर उनको बिठाया और फिर पूछा कि हुज़ूर का आना कैसे हुआ।

हमारे आने का और दूसरा क्या प्रयोजन हो सकता है सिवाय इसके कि अब तुम अपनी बाकी रक़म शीघ्र दे दो मगर वह बात अब बाद में करूँगा। पहले यह बताओ कि यहाँ क्या लीला हो रही थी। मुझे मालूम होता है कि अब तुम्हारे भी पर निकल रहे हैं। तुमको मालूम होना चाहिये कि यहां जो कारर्वाई अभी-अभी हुई है उसका प्रत्येक शब्द मेरे कानों में इस वक़्त भी गूंज रहा है। तुम और यह हिमाक़त ?

आसामी ने हाथ जोड़ते हुए नम्रता से कहा, हुज़ूर अपनी लड़की के लिये लड़का ठीक करने के बारे में मैंने इनको बुलाया था, जब वह बात तय हो चुकी तो किसी ने करुणेश की शादी का जिक्र कर दिया और उस पर ये सब बातें हो गईं। लेकिन हुज़ूर मैंने इस बातचीत में एक भी शब्द नहीं कहा।

यह मैं जानता हूँ कि तुमने इस बातचीत में तो कुछ नहीं कहा मगर घर तो तुम्हारा ही था जहाँ यह आलोचना हुई। लाला रामनरेश को भी मैं देख लूंगा। मैं मानता हूँ कि वे मेरी ज़मीन्दारी में नहीं रहते और न हो उनको मेरी सहायता की इस समय आवश्यकता है लेकिन वे नहीं जानते कि—

काम इन्सान को इन्सान से पड़ जाता है।
बात रह जाती है मगर वक़्त गुजर जाता है ॥

संसार में ऐसा अहंकार किसी का नहीं चला है। आज जिसको हम तुच्छ समझते हैं,कल वक्त पड़ने पर उसी के आगे हमें नतमस्तक होना पड़ता है। यही लाला साहेब आज १० वर्ष पहले कैसे मारे-मारे फिरते थे। भगवान की कृपा से व्यापार में पैर जम गये और अब किसी को खातिर में ही नहीं लाते, खैर देखा जायगा। इतना कह कर करुणेश के पिता वहाँ से उठकर अपने घर को चल दिये, वह क्रोधावेश में यह भा भूल गये कि वह इधर किस काम के लिये आये थे।

करुणेश अभी नहा-धोकर फारग़ ही हुआ था कि उसके पिता की आवाज़ सुनाई पड़ी। वह पिता जो के पास जाकर बोला "पिता जी यदि आज्ञा हो तो कुछ दिन के लिये किसी दूसरे स्थान से हो आवें क्योंकि सुखिया का स्वास्थ दिनोंदिन गिर रहा है। आज प्रात:काल जब डाक्टर आया था तो उसने इसी बात पर ज़ोर दिया था कि कुछ समय के लिये किसी पहाड़ी जगह पर सुखिया को ले जाओ, यहाँ इसका स्वास्थ अच्छा होना अब कठिन है, दूसरी जगह जाकर सुखिया के मन का बोझ ज़रूर हलका हो जायगा।"

ठीक है, कल ही हरद्वार चले जाओ, वहाँ हवा और पानी दोनों शुद्ध और पवित्र मिलेंगे। हाँ इतना अवश्य याद रखना कि हमें पूरी हालत सूचित करते रहना।

दूसरे दिन सुबह ही करुणेश और सुखिया हरद्वार के

लिये चल दिये, जो कुछ ज़रूरी सामान उनको चाहिये था वह भी साथ ले लिया और दो दिन रेल में यात्रा करने के बाद निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर करुणेश ने एक मकान किराये पर ले लिया और अब हर प्रकार से सुखिया का दिल बहलाने की चेष्टा करने लगा।

पाठकों को सन्देह हो रहा होगा कि सुखिया कब और कैसे बीमार हुई, उसको दूर करने के लिये उसका कुछ हाल लिखना बहुत ज़रूरी है। विवाह हुए एक महीना हो चला था, अभी तक सुखिया ने घर से बाहर पैर नहीं रक्खा था। सास इतना प्रेम करती थी कि दिन-रात सुखिया की प्रसन्नता के लिये चिन्तित रहती। वह भलीभांति जानती थी कि समाज वाले बिना अंगुली उठाये नहीं मानेंगे और वह लोगों की बातें भी सुन चुकी थी। यद्यपि कोई मुँह पर तो कुछ न कहता था किन्तु चोरी-चोरी यह चर्चा चल रही थी कि जब बड़े बड़े ही ऐसे काम करने लग गये तो फिर दूसरों का क्या कहना। यही वजह थी कि सास सुखिया को बाहर भेजने या किसी दूसरी औरत से मिलने के पक्ष में न थी, क्योंकि वह जानती थी कि अगर सुखिया को इस चर्चा का पता लग गया तो उसका दिल या तो उदास हो जायेगा या रुष्ट हो जायेगा।

मगर कब तक सुखिया का ऐसे रोका जा सकता था। करुणेश के पिता जिस मकान में रहते थे उसके पास ही उनका भाई का

मकान भी था। अब उनकी लड़की का विवाह था। विवाह में सहायतार्थ सुखिया की सास तो प्रतिदिन आया जाया करती थी परन्तु सुखिया को नहीं जाने देती थी। जिस दिन बारात आने वाली थी उस दिन करुणेश की चाची ने कहा कि बहन आज सुखिया को जरूर साथ लाना। पास में ५-६ औरतें और भी खड़ी थीं, सबने मिल कर इसकी पुष्टि की कि हाँ जबसे सुखिया का विवाह हुआ है तबसे वह चिड़ियाँ पिंजरे में ही बंद है, उसे जरूर आज लाओ ताकि वह भी देख सके कि अमीरों के विवाह कैसे होते हैं।

करुणेश की माँ ने पहले तो बहाना करके टालना चाहा मगर इतनी औरतों में उसकी दाल कब गल सकती थी। मजबूर होकर आज सुखिया को साथ लाने का वचन देकर चली गई। घर में पहुँच कर उसने सुखिया से बात की तो वह फौरन तैयार हो गई। वह तो मकान की चारदीवारी में लगातार रह कर उब गई थी, वह शाम के वक़्त सास से भी पहले कपड़े और आभूषण पहन कर चलने को तैयार हो गई।

ठीक जब बारात पहुँची तो सुखिया को साथ लेकर उसकी सास अपनी बहन के मकान की ओर चल पड़ी। वहाँ पहुँच कर देखा कि बहुत सी औरतें जमा हैं। बहुत सी औरतों ने सुखिया को देख कर नाक सिकोड़ी, एक ने इतने तक कह डाला कि कहीं दुलहन पर छाया न पड़ जाये।

इस औरत ने कहा तो धीरे था लेकिन सुखिया की सास ने सुन लिया। वह तिलमिला उठी, फिर दिल को काबू में करके शान्ति से बोली कि जैसा मुँह वैसी बात जो जिसके अन्दर होगा वही बाहर आता है, अन्दर बुराई होगी तो बाहर भलाई कहाँ से टपकेगी, यही कारण था कि मैं सुखिया को यहाँ लाना न चाहती थी·· ·····।

एक दूसरी औरत ने बात काट कर कहा—चलो रहने भी दो इन बातों को, गलती सबसे होती है बहन, तुम उसको माफ़ कर दो। वह तुमको माफ कर देती है।

पहली औरत ने ज़रा तमक कर कहा कि कैसी माफी, क्या मैंने अनुचित कहा है ?

सुखिया की सास ने डपट कर कहा कि चुप रह चुड़ैल, अभी समय नहीं था, नहीं तो तेरी ज़बान बन्द कर देती।

अन्दर से शोर सुन कर बाहर ३-४ आदमी बोल उठे कि यह महाभारत कैसा ? यहाँ तुम लोग कुछ काम करने आई हो या लड़ने-झगड़ने। वाह, वाह ! क्या कबूतरखाना समझ रक्खा है !!

सभी औरतें एक उलझन में पड़ गईं, वह किसको दोषी कहे, जैसे-तैसे उन्होंने मामला शान्त कर दिया। सुखिया की सास अब वहाँ एक पल भी ठहरना पसन्द न करती थी, वह सुखिया को लेकर अपने घर वापस चली आई।

सुखिया के दिल को एक ठेस लगी, उसने अपने दिल को बहुत सम्भाला मगर न सम्भल सका, वह अपने कमरे में चली गई और खूब दिल खोल कर रोई।

रोने से कुछ देर के लिये उसकी तबीयत हलकी हो गई लेकिन फिर सामाजिक कलंक का कंटक बार बार उसके दिल में चुभने लगा और वह कमजोर होने लगी। हर समय उदास देख कर करुणेश पूछता भी कि तुम्हें क्या हो गया है जो प्रतिदिन तुम्हारे चेहरे का रंग उड़ा चला जा रहा है किन्तु सुखिया यही कहती कि मुझे तो कोई रोग नहीं है, आपको भ्रम हो गया है।

मुश्किल से २० दिन और गुजरे होंगे कि सुखिया को अब चलना फिरना भी भार मालूम होने लगा। हर समय वह इसी चिन्ता में रहती कि मैंने अपना जीवन तो कलङ्कित किया ही था फिर दूसरे खानदान को बदनाम करने की क्या जरूरत थी। बस इसी चिन्ता में वह घुल रही थी। न तो दिन को अच्छी तरह वह खाती और न ही रात को आराम करती। सिवाय आंसू बहाने के और उसका कोई काम न था। अब हालत इतने तक पहुँच गई थी कि हर समय चारपाई पर पड़े रहना ही पसन्द करती थी।

सुखिया की ऐसी अवस्था देख कर करुणेश डर गया, माता-पिता की अनुमति से करुणेश डाक्टर बुला लाया, नाड़ी की जांच करने के बाद डाक्टर ने कहा कि दिल बहुत कमजोर

हो गया है, मेरी दूकान पर आकर दवाई ले आओ। इस तरह १० दिन तक दवाई होती रही किन्तु रोग कुछ भी कम न हुआ, अन्त में डाक्टर ने यही राय दी कि बाहर किसी पहाड़ी स्थान पर जाना ठीक है। उसी के अनुसार करुणेश सुखिया को लेकर हरद्वार आया था।

करुणेश के पिता आसामी के घर से जब अपने मकान पर पहुँचे तो राह से ही उनके मन में यही चिन्ता लगी हुई थी कि वास्तव में हमने यह ठीक नहीं किया, क्योंकि समाज का मुँह कौन बंद कर सकता है, यह दूसरी बात है कि मुँह पर हमें कोई कुछ न कहे लेकिन दूसरी जगह कहने में उनको कौन रोक सकता है। इस तरह मान-प्रतिष्ठा की जड़ खोखली हो जाती है। खैर, जो कुछ भी हो अब पछताने से क्या हो सकता है क्योंकि जो होना था वह तो हो ही चुका है। अब कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिये जिससे प्रतिष्ठा बनी रहे। अगर असल बात पूछी जाय तो हमने अन्याय नहीं किया बल्कि वह काम किया है जो संसार में बहुत कम आदमी कर सकते हैं। अगर करुणेश आगे न बढ़ता तो उस लड़की के जीवन का क्या होता? या तो उसका और पतन होता या आत्महत्या कर लेती। इन दोनों बातों से करुणेश ने उसको बचा लिया, फिर इसमें क्या बुराई है। लोग की जो मर्जी हो कहें हम उनकी ज़रा भी परवाह नहीं करेंगे।

करुणेश के पिता प्रतिभाशाली और बुद्धिमान थे, वह

अपने मन में तर्क-वितर्क करके संतुष्ट हो गये कि उन्होंने कोई पाप नहीं किया। पाठकों को मालूम होगा कि विवाह के पहले करुणेश को विश्वास दिलाया गया था कि सुखिया पवित्र नहीं रही है परन्तु दुर्घटना का पता अभी तक सीमित ही है। बात फैलने नहीं पाई है, मगर पाप कब तक छिप सकता है। कुछ ही दिनों के बाद एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे कान में बात चली गई थी। इस तरह बहुत से लोगों को मालूम हो गयी थी। समाज में जब कोई इस प्रकार की दुर्घटना हो जाय तो लोग बजाय इसके कि उसके सुधार का उपाय करें, उल्टे बुराई पर तुल जाते हैं और इससे अन्त में जो हानि होती है उसकी वे रत्ती भर भी परवाह नहीं करते।

सुखिया को लेकर करुणेश जब हरद्वार आया था तो माघ का महीना था। जाड़ा जोरों का पड़ रहा था। इतनी सरदी में भी करुणेश प्रातः ५ बजे गंगा जी में स्नान करने के लिये जाता था। एक दिन स्नान के लिये जब वह गंगा जी में उतरा तो अचानक पानी में रहने वाले किसी जानवर ने उस की टांग पकड़ ली। पहले तो करुणेश ने बल-प्रयोग किया मगर सफलता न हुई, अन्त में उसने सहायता के लिये आवाज़ दी किन्तु सहायता आने के पहले ही जानवर उसे घसीट कर गहरे पानी में ले गया और फिर करुणेश का कुछ पता न मिला। सहायता के लिये दो चार आदमी जो पहुँचे थे, वे

तैरना अच्छी तरह जानते थे किन्तु खोज करने पर उनके हाथ कुछ न आया और जब सूर्य्य भगवान निकल आये तो उन बेचारों ने भी अपनी खोज बंद कर दी।

घाट पर एक खासी भीड़ जमा हो गई थी और स्नान करके जो भी जाता था वह इस अफ़सोसनाक खबर को साथ लिये जाता था, इस तरह एक दो घंटे में ही यह खबर सब जगह फैल गई कि "आज एक यात्री गंगा जी की गोद में चला गया।" अगर करुणेश ने सहायता के लिये आवाज़ न लगाई होती तो अंधेरे में किसी को क्या पता चलता कि आज एक पवित्र हस्ती श्री गंगा जी में समा गई है।

दिन जब अधिक चढ़ आया तो सुखिया ने दाई से पूछा कि अभी तक स्नान करके लौटे नहीं? दाई ने कहा कि अभी तक तो नहीं आये।

ज़रा बाहर निकल कर गली में जो मन्दिर है वहाँ के पुजारी जी से तो पूछना, क्योंकि प्रतिदिन स्नान करके वहाँ जाते हैं, वहाँ से दर्शन करने के बाद घर लौटते हैं।

दाई— बहुत अच्छा। मैं अभी जाती हूँ।

दाई ने उस मन्दिर के पुजारी से आकर पूछा कि करुणेश बाबू अभी तक यहां आये हैं या नहीं? पुजारी जी ने उत्तर दिया अभी तक तो वह नहीं आये, क्या घर पर भी नहीं आये?

दाइ— घर में भी नहीं आये।' ५ बजे प्रातःकाल स्नान के लिये गये थे किन्तु अभी तक नहीं लौटे। यह सुन कर पुजारी जी का माथा कुछ ठनका, वे मन्दिर में आने वाले कई आदमियों से सुन चुके थे कि आज सुबह एक आदमी गंगा जी में डूब गया है, उसकी लाश तक का पता न मिला, कुछ गम्भीरता से पुजारी जी बोले कि अच्छा तुम घर में जाओ, मैं अभी पता लगाता हूँ।

पुजारी जी के साथ करुणाश की दो चार बार ही बातचीत हुई थी, इतने में ही पुजारी जी उस पर बड़े प्रसन्न हो गये थे और जान गये थे कि वह एक महान् व्यक्ति है, इसलिये करुणाश पर उनका हार्दिक स्नेह हो गया था। मन्दिर से उठ कर वे सीधे घाट पर आये, वहाँ पूछने पर पता चला कि जो आदमी डूबा है उसका एक कम्बल और एक धोती थाने में जमा करा दी गई है ताकि पहचान हो सके कि वह कौन था। पुजारी जी उस थाने में गये और थानेदार से वे कपड़े देखने के लिये उन्होंने प्रार्थना की। जब कम्बल देखा तो पुजारी जी के मुँह से एक हलकी सी चीख निकल गई—

थानेदार ने पास में आकर पूछा कि आप उस आदमी को पहचानते हैं ?

पुजारी—जी हाँ सरकार, हमारे मोहल्ला में ही वह ठहरा था। यही रेशमी धोती और धारीदार का कम्बल ओढ़ कर

सुबह ठाकुर जी के दर्शन करने आता था। आज बहुत देर तक जब न आया तो तरह तरह के विचार मेरे मन में उठ रहे थे, क्योंकि यह ख़बर भी मैं सुन चुका था कि आज सुबह एक आदमी गंगाजी में स्नान करते हुए बह गया है। मुझे तो सन्देह तब हुआ जब इसकी दाई खोज करने के लिये मेरे पास आई थी।

दारोगा साहेब ने उसी समय एक सिपाही को पुजारी जी के साथ कर दिया कि जाँच कर आवे और अगर वास्तव में वही आदमी है तो उसके घर का पूरा पता लिख लाये ताकि वहाँ सूचना दी जावे। सिपाही ने आकर जब जाँच की तो डूबने वाला आदमी करुणेश ही निकला, वह तो रिपोर्ट लेकर थाना चला आया, इधर जब सुखिया को पता लगा तो बेहोश हो गई। वह पहले ही कमजोर थी और जब यह वज्र-प्रहार हुआ तो उसके रहे-सहे होश भी उड़ गये। पुजारी जी ने अपनी औरत को बुला कर सुखिया के पास रख दिया और ताकीद कर दी कि अच्छी तरह सुखिया की देखभाल करना। २ या ३ दिन के अन्दर ही करुणेश के पिता यहाँ पहुँच जायेंगे फिर वे रोगी को सम्भाल लेंगे।

दुर्घटना के ठीक तीसरे दिन करुणेश के माँ-बाप हरद्वार मे पहुँच गये। जिस दिन करुणेश डूबा था उसी दिन दारोगा साहेब ने तार-द्वारा सूचना दे दी थी और तार के पढ़ते ही उसी दिन वे

चल पड़े थे। हरद्वार में पहुँच कर जब वे उस मकान में आये जहाँ कि सुखिया अपने अन्तिम श्वास गिन रही थी तो मकान उनको भयानक नजर आने लगा। करुणेश की माँ सुखिया को गले लगा कर खूब रोई। एक दो घंटा तक तो करुणा की वह नदी बहती नजर आयी जो गंगाजी के वेग को भी मात करती थी। पुजारी जी ने सबको सान्त्वना दी और समझाया कि जो होना था वह तो हो चुका अब सुखिया की ओर ध्यान देना चाहिये।

दूसरे दिन पुजारी जी एक खास डाक्टर को बुला लाये जिन्होंने अच्छी तरह परीक्षा करके औषधि दी और ४-५ दिन तक उनकी ही दवाई चलती रही, मगर आराम कुछ भी न हुआ। अब सुखिया इतनी कमजोर हो गई थी कि उससे हिला तक न जाता था। करुणेश के माँ-बाप को चिन्ह अच्छे दिखाई नहीं देते थे इसलिये उन्होंने दिल खोल कर सुखिया से दान कराया। उनको यह बड़ा दुःख था कि करुणेश से वे कुछ भी अन्त समय दान न करवा सके इसलिये सुखिया पर ही वह कसर भी पूरी की।

सुखिया शायद इसी अन्तिम दान की प्रतीक्षा कर रही थी क्योंकि जैसे दान की कार्रवाई समाप्त हुई, सुखिया ने एक लम्बी सांस ली और सर्वदा के लिये इस संसार को छोड दिया।

अगर सुखिया संसार में बनी रहती तो सम्भव था करुणेश

के मा-बाप सामाजिक बुराइयों के शिकार बने रहते मगर उस कंटक के निकल जाने से भी वह सुखी नहीं हुये। उनको इन मौतों से कुछ ऐसा धक्का लगा कि संसारिक काम-काज मे वे बिलकुल अलग हो गये। किसी भी काम में वे भाग न लेते थे। एक प्रकार के विरक्त से हो गये। पाठक अब अच्छी तरह समझ सकते हैं कि रमेश को दुःख में सहायता देता तो कौन देता क्योंकि न तो उसकी सुखिया ही संसार में थी और न करुणेश ही। विवाह हुए अभी ४ महीने भी न हुये थे कि दामाद और लड़की दोनों चल बसे और बाकी बचे करुणेश के माँ-बाप, वे इस योग्य ही न रहे थे कि वे रमेश की कुछ सहायता करते क्योंकि वे संसार को झंझटों से अलग हो गये थे।

१८

रमेश जेल में पड़ा सजा के दिन काट रहा था। उसे अपने कृत्य पर दुःख तो जरूर था मगर जमीन पर अपना अधिकार हो जाने से प्रसन्नता भी थी। हमें उसे तो वहीं जेल में ही छोड़ना चाहिये और अब उसके घर का कुछ हाल लिखना चाहिये।

लक्ष्मी यद्यपि बड़ी चतुर और तजुरबेकार औरत थी परन्तु आए दिन की मुसीबतों ने उसकी कमर तोड़ दी थी। पेट खाली होने से चतुरता भी काम नहीं देती। अब घर में सिवाय लक्ष्मी और एक लड़के के और दूसरा कोई न था। रमेश भी जेल में और जो लड़का मिल में काम करता था वह भी जेल की हवा खा रहा था। घर में कुछ भी तो बचा हुआ न था, जो कुछ था वह पहले ही मुकदमे की पैरवी में खर्च हो गया और अब कोई कमाने वाला भी तो न था। फिर घर का खर्च कैसे चले।

एक दिन लक्ष्मी ने तंग आकर अपने लड़के से कहा कि तुम अब बच्चे तो हो नहीं जो माँ के पास ही बैठे रहा करो, तुमको बाहर निकल कर कुछ न कुछ करना चाहिये। मैं यह मानती हूँ कि बैल न होने से तुम खेती नहीं कर सकते मगर तुम्हारे हाथ-

पैर तो हैं, खेती न सही कोई और ही काम करो। जिससे पेट तो चले।

लड़का समझदार था, उसने भाँप लिया कि माँ को दुःख पहुँचा है जिससे मजबूर होकर उसने मुझे फटकारा है। बात भी सही है। अगर खेती का साधन नहीं तो मज़दूरी ही सही। उसने निश्चय करके अपनी माँ से कहा कि तुम चिन्ता न करो मैं कल ही पास वाले गाँव में जाकर मज़दूरी करूँगा और जैसे होगा तुम्हारा और अपना पेट चलाऊँगा।

लक्ष्मी—कल किसने देखा! आज ही क्यों न जाकर काम ठीक करो।

अच्छा लो अभी जाता हूँ, इतना कह कर वह उठा और वहाँ से २ कोस पर एक गाँव जिसका नाम ओरछा था वहाँ के लिये चल दिया। १२ बजे वह उस गाँव में पहुँच गया, गाँव कोई मामूली न था, वहाँ कुछ ज़मीन्दार भी रहते थे और दूसरी आबादी भी अच्छी खासी थी। एक दो घंटा काम खोजने के बाद वह उस जगह पर पहुँचा जहाँ एक ज़मीन्दार का पक्का मकान बन रहा था। मालिक महोदय भी भाग्यवश वहीं उपस्थित थे, उनके पास जाकर लड़के ने बड़े विनीत भाव से प्रार्थना की कि अगर मुझे कुछ काम मिल जाता तो बड़ी कृपा होती।

आदमी की इतनी जरूरत तो न थी लेकिन जमीन्दार महो-

दय उसकी प्रार्थना से द्रवीभूत हो गये और अपने मुन्शी को बुलाकर बोले कि इसे भो ।) रोज पर रख लो। मुन्शी ने उसी वक्त मज़दूरों की लिस्ट में उसका नाम लिख लिया और उसी दिन से काम पर लगा दिया। वह दिन भर वहीं काम करता और शाम को अपनी मज़दूरी लेकर घर चला जाता, इस तरह लक्ष्मी और वह ग़रीबी के दिन काटने लगे।

रमेश को जेल में गये ३ महीने हो चुके थे। उधर रमेश भी जेल के दिन इसी आशा पर काट रहा था कि चलो जमीन तो मिल ही गई है अब हालत बदलते क्या देर लगेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जितनी मुसीबतें रमेश पर आई हैं उतनी यदि किसी और साधारण मनुष्य पर आती तो उसका बुरा हाल होता। यह तो रमेश में साहस और सन्तोप का बल था जो इतने प्रहारों को सहता चला आ रहा था। उसने आज दिन तक हिम्मत न छोड़ी थी। यदि कभी हिम्मत जवाब देने लगती तो लक्ष्मी उसमें नई रूह फूंक देती थी।

इधर लक्ष्मी भी अपने भाग्य से सन्तुष्ट रहती यद्यपि ।) में माँ–बेटे का गुज़ारा मुश्किल था फिर भी अपनी योग्यता के बल से लक्ष्मी दोनों अवसर पेट भरने लायक भोजन तैयार कर देती। लक्ष्मी के लिये तो कुछ न था क्यों कि उसे वह दिन भर मामूली काम ही करना पड़ता था मगर लड़के के लिये कठिनता थी क्योंकि उसे दिन भर कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। इतना

शारीरिक काम करने पर जब किसी को अच्छी खुराक न मिले तो स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। दो महीने तक तो वह बेचारा यही खाना खाकर इतना काम करता रहा लेकिन अब उसे कमजोरी, प्रतीत होने लगी और जितना खाना वह पहले खा सकता था उतना अब उससे न खाया जाता था।

लक्ष्मी ने पहले तो इस तरफ कोई ध्यान न दिया मगर जब लड़के की खोराक आधी रह गई तो वह घबड़ाई। उसने लड़के से कहा कि क्या बात है, अगर तबीयत ठीक नहीं तो दो-चार दिन आराम कर लो। मालिक महोदय को अपना पूरा हाल कह-कर उनसे कुछ दिन की छुट्टी ले आओ।

छुट्टी की क्या बात है, कौन वहाँ नौकरी लगी हुई है। जैसे वहाँ मजदूरी करते हैं वैसे दूसरी जगह कर लेंगे मगर यहाँ कठिनता तो यह है कि आज कमाओ और आज खाओ, दो-चार दिन किसके सहारे बैठें। मेरी तबीयत एक महीने से खराब है लेकिन इसी कारण काम न छोड़ा था कि खायेंगे कहाँ से। यह तो तुमको मालूम ही हो गया है कि पिता जी के रहते तो बहुत से दोस्त आते थे मगर उनके जेल चले जाने से अब सहायता की कौन कहे उन महानुभावों के दर्शन तक दुर्लभ है।

लक्ष्मी— बेटा यह कोई नई बात नहीं। दुःख में कोई किसी का समय नहीं देता, अगर दुःख मुसीबत में सहायता मिलती

रहे तो फिर दुःख कहाँ ? इसलिये दूसरों को आशा तो रखनी व्यर्थ है, हाँ एक बात मैं कहती हूँ, कि कल तुमने मालिक महोदय से कहना कि मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, मुझे कुछ दिन आराम करना चाहिये मगर मुशकिल यह है कि हमारे घर में इतना अन्न नहीं है जिससे दो दिन गुज़ारा चल सके। रोज़ ।) जो मिलते हैं उसी में गुज़र होती है। अगर मैं दो-चार दिन आराम करूँगा तो खायेंगे क्या। इसलिये दो चार दिन के लिये मेरी जगह मेरी माँ काम करेगी...... ।

बेटे ने इसके आगे कुछ भी सुनना पसन्द न किया और बीच में ही वह बोल उठा कि माँ ऐसा मेरे जीते जी नहीं हो सकेगा। जब आज दिन तक तुमने बाहर दूसरे की मज़दूरी नहीं की तो क्या आज मेरे रहते ऐसा करोगी ?

लक्ष्मी — बेटा तुम नहीं जानते, ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है, आज जिसका जीवन तुम सुखमय देखते हो कल वही दुखमय हो सकता है, जिसके दर पर आज तुम जाकर ठोकरें खाते हो अगर प्रभु की इच्छा हो तो कल वही तुम्हारे दर पर ठोकरें खा सकता है। इसलिये मानापमान की परवाह न करनी चाहिये। मनुष्य पर जैसे दिन आवें मीठे समझ कर काटने चाहिये, मेहनत और मज़दूरी में कोई ऐब नहीं, तुम कल जरूर कहना और फिर मालिक महोदय जो उत्तर दें वह मुझे आकर बताना।

लड़के की इच्छा तो न थी मगर माँ ने ऐसा समझाया कि बेचारे से कोई जवाब न बन पड़ा। दूसरे दिन जब वह काम पर गया तो मालिक महोदय से अपना सारा हाल सच-सच कह सुनाया और साथ ही माँ के काम करने वाली बात भी कह दी। मालिक दयालु हृदय का आदमी था, दुखी परिवार का हाल सुन कर उसको दया आ गई। उसने लड़के से कहा कि आज तुम कुछ काम मत करो, ऐसे ही बेकार यहाँ बैठे रहो, शाम को मैं तुमको तुम्हारी बात का उत्तर दूँगा।

लड़के को दूसरी ओर भेज कर मालिक महोदय ने अपने मुन्शी को बुलाकर कहा कि जिस लड़के को हमने ।) रोज़ पर रखने के लिये तुमसे कहा था वह अभी मेरे पास आकर कह रहा था कि अधिक मेहनत करने से उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है और साथ ही उसमें इतनी शक्ति भी नहीं जो दो दिन बिना काम के रह कर अपनी गुज़र चला सके। इसलिये तुम अभी उससे पता पूछ कर उसके घर जाकर जाँच करो कि इसमें कहाँ तक सचाई है, कहीं बहानाबाज़ी ही न हो, शाम से पहले ही ख़बर लेकर वापस आ जाना।

मुन्शी तुरन्त उस लड़के से उसके घर का पता पूछकर उसी गाँव में पहुँचा जहाँ उसका घर था। गाँव के लड़कों से रमेश का घर पूछ कर उसके घर में गया। लक्ष्मी उस समय आटा पीस रही थी, एक अपरिचित आदमी को अपने सामने

खड़ा देख कर वह फौरन उठ खड़ी हुई और धीमे स्वर में बोली कि श्रीमान् कौन हैं और आपका आना कैसे हुआ ?

मुन्शी जी चालाक प्रकृति के मनुष्य थे वे गम्भीरता से बोले क्या कहें, आज ५ वर्ष हुये रमेश ने हमसे २) लिये थे लेकिन आज दिन तक हमें न मिले। मैं जानता हूँ कि रमेश जेल में है और इस समय आपसे माँगना एक प्रकार की कठोरता है मगर क्या किया जाय मैं भी कोई धनवान नहीं आप लोगों की तरह एक मामूली किसान हूँ, और इस समय मुझे ज़रूरत भी बहुत थी। मैं हरगिज़ माँगने न आता लेकिन जब मुझे यह मालूम हुआ कि तुम्हारा लड़का एक ज़मीन्दार के पास काम कर रहा है तो इतना साहस किया है। यह कहकर मुन्शी जी ने लक्ष्मी के चेहरे पर नज़र डाली, उनको आँखें तो दिखाई न दीं मगर आँखों से गिरते हुए आँसू नज़र आ गये।

लक्ष्मी ने आँसू पोछते हुए कहा आपसे क्या चोरी है। यहाँ तो पेट भर अन्न के लाले पड़े हुए हैं। यह सही है कि लड़का।) आने रोज़ की मजदूरी करता है मगर सब पेट में चला जाता है, अगर आपको विश्वास न हो तो मैं घर के बाहर खड़ी हो जाती हैं, आप तलाशी ले सकते हैं। आपको कोई भी वस्तु फालतु दिखाई दे तो उसे आप लेकर बेच सकते हैं।

लक्ष्मी कुछ देर विश्राम करने के लिये कहती ही रह गई मगर मुन्शी जी को तो अपने मालिक के पास जितनी जल्दी हो सके

पहुँच कर अपनी रिपोर्ट देनी थी अतएव वह लक्ष्मी को बिना कुछ जवाब दिये ओरछा की ओर चल दिये ।

ज़मीन्दार महोदय ने जिस समय मुन्शी जी को रमेश के घर ज़ाँच के लिये भेजा था उस समय ८ बजे थे। वे ८ बजे से मजदूरों का काम खुद देखने के लिये वहाँ ठहर गये क्योंकि उन्होंने विचार किया कि मुन्शी जी तो यहाँ नहीं हैं इसलिये २ या ४ घंटे तक आज मैं ही ठहर कर काम देख लेता हूँ। जहाँ मकान का काम हो रहा था वहाँ पास में एक कुर्सी पर वे बैठ कर काम देखने लगे। जब १० का वक्त हुआ तो एक नौकर ने आकर जमीन्दार महोदय से कहा कि हुज़ूर के घर लड़का पैदा हुआ है और आपको घर में बुलाया गया है।

ज़मीन्दार महोदय ५० के लगभग हो गये थे। उनके लड़कियाँ तो ७ थीं मगर लड़का अभी तक एक भी न हुआ था। इस शुभ संवाद को सुन कर उन्हें अपार प्रसन्नता हुई। पहला काम तो उन्होंने यह किया कि जितने आदमी मकान के काम में लगे हुए थे सबको उसी वक्त छुट्टी दे दी लेकिन रमेश के लड़के को बुला कर कहा कि तुम अभी बैठो, जब हम कहेंगे तब जाना; इसके बाद ज़मीन्दार महोदय अपने घर पर आये। उधर मज़दूरों को जब छुट्टी हुई तो गाँव भर में यह खबर बिजली की तरह फैल गई कि ज़मीन्दार महोदय के लड़का पैदा हुआ है।

लगभग २ बजे मुन्शी जी ओरछा में पहुँचे। उन्होंने देखा

कि मकान के पास कोई भी मज़दूर नहीं है इसलिये आगे बढ़ कर एक आदमी से पूछा कि यहाँ आज सुबह जो मज़दूर काम कर रहे थे वे कहाँ गये। उस आदमी ने कहा आप नहीं जानते कि मालिक महोदय के घर लड़का पैदा हुआ है, जाइये न उनके मकान पर, देखिये वहाँ क्या बहार है।

मुन्शी जी यह सुन कर अपने मालिक के रहने वाले मकान की तरफ चल दिये। दूर से ही उनको बाजे वालों की आवाज़ सुनाई दी, थोड़ा आगे बढ़े तो मनुष्यों की एक खासी भीड़ भी दिखाई दी। वह समझ गये क्यों न ऐसा हो, जो कुछ इस समय करें थोड़ा है। बुढ़ापे में बेटा, इससे बड़ा भाग्य और क्या। भगवान ने सब कुछ दिया था मगर एक इसी वस्तु की कमी थी, चलो वह भी पूरी हो गई। मुन्शी जी इन्हीं विचारों में भीड़ के निकट पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा कि चारों तरफ लोग खड़े हैं और बीच में एक भाँड पार्टी बैठी अपनी नक़लें दिखा रही है। जब मुंशी जी वहाँ पहुँचे तो उनकी एक नकल खत्म हो चुकी थी, और देखने वालों को इतना मजा आया था कि वे एक और नक़ल सुनाने के लिये ज़ोर दे रहे थे। मुन्शी जी ने देखा ज़मीन्दार महोदय कुछ चुने हुये लोगों के साथ एक ऊँचे स्थान पर बैठे यह तमाशा देख रहे हैं। उस समय वे भी कह रहे थे कि हाँ एक और होने दो। मुन्शी जी ने उस समय अपनी रिपोर्ट देना उचित न समझा, वे भी वहीं खड़े होकर भाँडों की नक़ल सुनने लगे।

नक़ल तो ज़मीन्दार महाशय के मकान पर हुई मगर अपने पाठकों के मनोरंजनार्थ हम यहां लिख देते हैं।

पात्र

नं० १ भाँड अख़बार का एडीटर

,, २ ,, कम्पोज़ीटर (जिसका नाम चरकटे था)

,, ३ ,, गुलमोहम्मद (एक आदमी का नाम)

एडीटर (अपने आफिस में, प्रवेश करते हुए)—तोबा तोबा लाहोल बिल्ला कुवता इल्ला बिल्ला—बाजार में पंजा टेकना दुश्वार हो गया है। बाजार निकलते ही ये लोग ऐसे देखते हैं जैसे मैं कलकत्ते के चिड़ियाँखाने का कोई जानवर हूँ, या अफ्रीका का कोई बन्दर हूँ। दूकानदार दूकानें छोड़-छोड़ कर मुझे देखने के लिये सड़कों पर जमा हो जाते हैं। मोहल्ले के लौंडे मुझे आते हुए देख कर तालियां बजाते हैं, मज़ाक उड़ाते हैं मगर यह सब हमारी अख़बार "नज़र बट्टू" की शोहरत का नतीजा है वरना यह मुँह और मसूर की दाल। हैलो मिस्टर चरकटे, अख़बार का प्रूफ तैयार है ?

चरकटे—अजी प्रूफ़ कहाँ से तैयार होगा, अभी तो बर्क़ी ख़बरें भी दस्तयाब नहीं हुईं।

एडीटर—तुम आदमी हो या पाजामा, इतने दिनों से दफ़तर में क्या झक मार रहे हो ? बर्क़ी ख़बरें भी क्या नहीं बना सकते हो ? अमां लिख दो जापान में एक खौफनाक ज़लज़ला आया,

सैंकड़ों मकान उलट गये, तीन सौ औरतें बेवा और चार हज़ार मर्द यतीम हो गये। हिमालिया पहाड़ फट गया, क़बरस्तान उलट गया और मुर्दे क़बरों से निकल निकल कर रेलवे वर्कशाप में भरती हो रहे हैं। नर्बदा का पुल टूट गया। नारवे के एक स्टेशन पर पैसन्जर ट्रेन मालगाड़ी से टकरा गई। चौपटपुर के नवाब साहब बम्बई में जेब कतरते हुए पकड़े गये। हिन्दोस्तान में मर्द और औरतों की जंग होने वाली है। हवाई जहाज से चील की शादी हो गई। यही सब बक़ीं खबरें हैं, लिख दो।

चरकट—मगर यह तो सब झूठ है।

एडीटर -अरे तो भले आदमी बक़ीं खबरें सच ही कौन सी होती हैं·········।

गुल मोहम्मद (आफिस में प्रवेश करते हुए)—उफ़ गज़ब सितम, कहर, ज़हर, फ़रेब, धोखा, झूठ, सरासर झूठ, सियाह झूठ, ज़र्द झूठ, लाल झूठ, बड़ा झूठ, कड़ा झूठ, कहाँ है एडीटर का बच्चा, निकालो बाहर खा जाऊँगा उसे मैं कच्चा।

एडीटर—या इलाही खैर—अजी हज़रत हुआ क्या आप तो घबराये हुए मालूम होते हैं।

गुलमोहम्मद—अबे घबराऊँ कैसे नहीं, घबराने का बच्चा, एक तो अखबार में झूठी खबर छाप दी और फिर भी पूछता है घबराये हुए क्यों हो।

एडीटर—अजी बंदा परवर कैसी झूठी खबर ?

गुलमोहम्मद—यह देख इधर।

एडीटर—ओ हो हो हो, तो क्या आपका ही नाम शेख गुलमोहम्मद है।

गुलमोहम्मद—और नहीं तो क्या तेरे बाप का नाम गुल-मोहम्मद है, अबे तू कुलंगी की औलाद है ?

चरकटे—हाँ हाँ जाने दीजिये साहब, आफिस में एडीटर साहब की इज्जत किरकिरी हो जायेगी।

एडीटर—अजी आप इतने गर्म क्यों होते जा रहे हैं। अगर आप नहीं मरे हैं और मैंने झूठ-मूठ आपके मरने की खबर छाप दी तो इसमें क्या हर्ज हुआ।

गुलमोहम्मद—लीजिये सारी दुनिया के सामने मेरा जनाज़ा निकाल दिया और फिर कहता है कि इसमें क्या हर्ज हुआ।

एडीटर—हाँ हाँ जनाब कोई हर्ज नहीं हुआ। अखबार तो घर का है, यह लीजिये मैं कल सुबह आपके दोबारा पैदा होने की खबर छाप देता हूँ। चलिये मामला बराबर हो गया।

गुलमोहम्मद—अबे कल मैं मर गया। कल फिर पैदा हो जाऊंगा, मगर आज मैं कहाँ हूँ।

चरकटे—अपनी माँ के पेट में ।

गुलमोहम्मद—चुप रह गुस्ताख।

एडीटर—यह भी ठीक है चलो रहने दो यह भी अच्छा हुआ जो ध्यान में अभी आ गई वरना कल इसके लिये भी अख़बार की दो लाईन काली करनी पड़ती ।

इसके बाद भांडों ने जयकार बुलाई और अपना इनाम लेकर चलते बने । उपस्थित भीड़ भी फटने लगी और धीरे धीरे मैदान खाली हो गया । जब सब चले गये और मालिक महोदय अकेले रहे तो मुन्शी जी ने पास जाकर पहले तो बधाई दी फिर अपनी जाँच की रिपोर्ट दी ।

मालिक महोदय—क्या वास्तव में उनके घर की इतनी शोचनीय अवस्था है ? यों तो हिन्दुस्तान में किसान प्राय: गरीब ही हैं मगर इस प्रकार की हालत तो शायद ही किसी की हो ।

मुन्शी जी—हुजूर मेरे पास ऐसे शब्द ही नहीं जिनसे मैं उनकी गरीबी का हाल बता सकूँ, बस इतने में ही समझ लीजिये की गरीबी की वहाँ हद खत्म है ।

मालिक महोदय—खैर उस लड़के को बुलाओ, जो मकान बन रहा वह उसके किसी कमरे में लेटा हुआ मिलेगा, फौरन एक आदमी को उसके पास भेजो ।

मुन्शी जी ने उसी वक्त एक आदमी को भेजा जो २० मिनट में ही उसको साथ लेकर चला आया। पहुँचते ही लड़के ने मालिक महोदय को प्रणाम किया और आज्ञा के लिये उनका मुँह देखने लगा।

मालिक महोदय ने अपनी जेब से एक दस रुपये का नोट निकाल कर उसकी तरफ़ बढ़ाया और कहा कि लड़का पैदा होने की खुशी में हम तुमको यह दे रहे हैं, जितने दिन तक तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक न हो यहाँ काम पर न आना, जब भले चंगे हो जाओ तो आजाना। मेरे ख्याल में घर-खर्च के लिये इस समय १०) काफ़ी हैं अगर यह खत्म हो जाय और तुम काम के लायक न हो सके तो हमको सूचना भेजवा देना, हम कुछ खर्च भेज देंगे।

लड़के ने झिझकते हुए नोट को अपने हाथ में थाम लिया और हृदय से कई बार धन्यवाद देकर अपने घर की ओर चल पड़ा। राह में रह-रह कर उसे मालिक की दयालुता का ख्याल आ रहा था। वह मन ही मन विचार करने लगा कि दुनिया में ऐसे लोग अभी भी मौजूद हैं जो दूसरे को दुखी देख कर उसको निःस्वार्थ सहायता करते हैं; मैंने तो अपने विपद्-काल में यही अनुमान लगाया था कि दुःख में कोई साथी ही नहीं बनता मगर मेरी यह धारणा आज झूठी साबित हुई, इन्हीं विचारों में मग्न वह चला जा रहा था तो उसे अपने गांव में रोशनी जलती दिखाई

दी। पूरे नौ बजे वह अपने घर के द्वार पर पहुँचा। लक्ष्मी जो द्वार पर बैठी उसकी राह ताक रही थी बेटे के सिर पर हाथ रखते हुए बोली कि आज इतनी देर कैसे हुई, तबीयत तो अच्छी है न ?

लड़के ने आगे बढ़ते हुए कहा कि तबीयत तो अच्छी नहीं थी मगर अब कुछ सम्भली सी जान पड़ती है।

लक्ष्मी – तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आयी, जरा साफ़-साफ़ कहो कि क्या बात है।

माँ, मेरे विचार से तो हमारे दुर्दिन आज ही समाप्त हो गये। अब तुम्हें ज़रा भर भी सोच न करनी चाहिये। इतना कहने के बाद लड़के ने १०) का नोट माँ के सामने फेंकते हुए कहा कि लो सम्भाल कर रक्खो।

लक्ष्मी—बेटा मैं फिर कहती हूँ कि मेरी समझ में खाक भी नहीं आया कि तुम क्या कह रहे हो। हमारे दुर्दिन कैसे समाप्त हो गये और यह १०) का नोट कहाँ से मिला ?

और कहाँ से मिलता, वही दयालु मालिक महोदय जिनके मकान पर मैं काम करता हूँ हमारे संरक्षक खड़े हुए हैं। आज सुबह जब मैं वहाँ पहुँचा तो मैंने सीधे मालिक महोदय के पास जाकर अपने स्वास्थ्य की निर्बलता और आर्थिक संकट के बारे में कहा और साथ ही तुम्हारी काम न करने वाली बात भी कह दी। मालिक महोदय कुछ देर सोच कर बोले कि अच्छा शाम

तक सबर करो मैं उस वक़्त इसका उत्तर दूँगा। लेकिन मेरी बातचीत के २ घंटे बाद मालिक को ख़बर मिली कि उनके घर लड़का पैदा हुआ है। इस खबर के मिलते ही मालिक महोदय ने तमाम मज़दूर और कारीगरों को छुट्टी दे दी मगर मुझे बुला कर बोले कि तुमको थोड़ा बुखार है इसलिये घर अभी मत जाना, शाम के वक़्त मुझसे मिलकर जाना।

लक्ष्मी ने बात काटते हुए कहा कि बुख़ार कितनी देर तक रहा था और मामूली ही था या जोर का हो गया था।

यह तो मुझे मालूम नहीं कि ज़ोर का था या मामूली, क्योंकि जब वहाँ से सब चले गये तो मैं एक कमरे में चादर तान कर ऐसा सोया कि मुझे कुछ भी होश न रहा। जब ६ बजे तो एक आदमी ने मुझे उठाकर कहा कि मालिक महोदय अपने मकान पर बुला रहे हैं। मैं उनके पास पहुँचा तो सूर्य अस्त हो चुका था और उस वक़्त मुझे बुखार भी न था, हाँ कुछ कमज़ोरी जरूर महसूस हो रही थी।

लक्ष्मी—हाँ तो आगे मालिक महोदय से क्या बात हुई ज़रा जल्दी कहो, खाना भी ठंडा हो रहा है।

बातें तो विशेष कुछ भी न हुईं। मालिक महोदय ने यही १०) का नोट मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा कि इसे ले लो और जबतक तन्दुरुस्त न हो तो काम पर न आना किन्तु अपनी हालत की सूचना देते रहना। अगर जरूरत हुई तो और दूँगा।

इतना कहने के बाद उसने माँ से एक लोटा जल मागा, मुह-हाथ धोकर भोजन के लिये तैयार हो गया। दोनों ने भोजन किया, रात अधिक चली गई थी अतएव अपने अपने बिस्तर पर ऐसे गिरे कि सुबह ही आँख खुली।

यह सत्य है कि सुख में आलस्य और दुःख में स्फूर्ति का प्रादुर्भाव होता हैं। १०) मिलने से उस परिवार को प्रसन्नता ता हुई मगर वह प्रसन्नता कब तक टिक सकती थी। लक्ष्मी भले ही कदम फूँक-फूँक कर रखती थी मगर जिस खजाने से धन निकलता ही रहा और उसमें पड़े न तो वह एक न एक दिन अवश्य खाली हो जायगा। वैसे ही एक महीना तो निकल गया अब एक आध रुपये के लगभग ही बचा हुआ था कि लक्ष्मी पर चिन्ता सवार हुई। बेटा का स्वास्थ्य अभी तक अच्छा न हुआ था। उसको रोज़ बुखार हो जाता था, इसलिये वह मालिक महोदय के पास जाने में असमर्थ था। लक्ष्मी ने पत्र-द्वारा सूचना देनी उचित समझी। एक बड़े विनीत भाव से ज़मीन्दार महोदय को पत्र लिख कर डाक में छोड़ दिया और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

पत्र छोड़ने के ठीक चौथे दिन वही मुन्शी जी उनके घर आ उपस्थित हुए। लक्ष्मी ने देखते ही पहचान लिया कि यह वही महाशय हैं जिनको मेरे पति से ३) लेने हैं। वह तुरन्त उठी और चारपाई डाल कर बैठने के लिये प्रार्थना की।

मुन्शी जी ने मुसकराते हुए कहा कि इतना कष्ट करने की जरूरत नहीं। मुझे बहुत जल्दी है, तुम्हारा लड़का कहाँ है मैं उसे देखना चाहता हूँ।

लक्ष्मी मुन्शी जी को अन्दर एक कमरे में ले गइ, वहाँ उसका लड़का सोया हुआ था। मुन्शी जी ने जगाया तो लड़का मुन्शी जी को देख कर हैरान हो गया और वह चारपाई के नीचे उतरना ही चाहता था कि मुन्शी जी ने हाथ से पकड़ कर चारपाई पर ही बिठाते हुए कहा कि कोई हर्ज नहीं अपने स्वास्थ्य का हाल कहो।

क्या कहूँ मुन्शी जी बुखार ऐसा हाथ धोकर पीछे पड़ा है कि पिंड छोड़ता ही नहीं। रोज दोपहर को चढ़ जाता है और रात को उतर जाता है। हाँ आप अपनी कहिये, मकान अभी बन रहा है या तैयार हो गया है, और मालिक महोदय तो कुशल-मंगल से हैं ?

हाँ, वहाँ हर तरह से कुशल-मंगल है, यह ५) का नोट लो। मालिक महोदय ने तुम्हारे लिये दिया है और अब मैं जाता हूँ, क्योंकि मालिक ने कहा था कि खबर लेकर शीघ्र आना। मुन्शी जी ने नोट देकर लक्ष्मी की ओर देखा तो वह विस्मय और कृतज्ञता के नेत्रों से मुन्शी जी को देख रही थी। मुन्शी जी ताड़ गये कि इसे कोई शंका है, अतएव उन्होंने लक्ष्मी की ओर देखते हुए कहा कि मुझे माफ करना। मुझे उस दिन कुछ जाँच करनी थी, इसलिये मैंने झूठ का आश्रय लिया था। मुझे कुछ

भी रमेश से नहीं लेना है। जिसके यहाँ तुम्हारा लड़का काम करता था मैं उसी मालिक महोदय के मुन्शी का काम करता हूँ।

लक्ष्मी ने हाथ जोड़ कर धन्यवाद देते हुए कहा कि लड़के का यदि किसी वैद्य अथवा डाक्टर द्वारा चिकित्सा का प्रबन्ध हो जाता तो बड़ी कृपा होती।

वह भी हो जायगा, चिन्ता न करें। इतना कह कर मुन्शी जी चल दिये और मालिक महोदय के पास पहुँच कर सब बातें जो देखीं और सुनी थीं, कह सुनाईं। मालिक महोदय ने दूसरे दिन एक वैद्यराज को बुला कर मुन्शी जी के साथ रमेश के घर भेज दिया, जिसकी औषधि से पाँच-छः दिन के अन्दर ही लड़के को आराम हो गया और कुछ दिन और विश्राम करने के बाद वह मालिक महोदय की सेवा में जा हाज़िर हुआ। मालिक महोदय ने उसे अब अपने घर में काम-काज के लिये १०) माहवार पर रख लिया, इसी वेतन में वह और लक्ष्मी रमेश के आने तक घर का निर्वाह करते रहे।

११

वाचकवृन्द ! आपलोग तो भलीभांति जानते हैं कि बेचारा रमेश कारागार का मेहमान बना हुआ था। डेढ़ वर्ष की कड़ी सजा थी। परन्तु भाग्यवश इस कठिन परीक्षा का सामना बड़ी वीरता और धीरता से कर रहा था। अन्य उसके सहकारी और उपकारी भी उसी कारागार की चहारदीवारी के अन्तर्गत रह संकटपूर्ण घड़ियाँ गिन रहे थे। बड़ी उत्सुकता से सबके सब अपनी अवधि की प्रतीक्षा कर रहे थे।

हाँ तो, रमेश में यहाँ एक विशेषता दीख पड़ती थी। उसके जीवन-प्रवाह में एक नवीनता का अभ्युदय दृष्टि-गोचर हो रहा था। उसमें एक प्रकार की सजीवता के संचार का सम्मिश्रण था। ग़रीबी का मारा हुआ, दुर्दैव का प्रहारित किया हुआ, समाज का ताड़ित किया हुआ, वातावरण का उभाड़ा हुआ, पाशव वृत्तिवालों के द्वारा सताया हुआ, वह क्षीणकाय अपने परिवार के विषय में चिन्तित हो रहा था। उसने एक ऊर्ध्व श्वास खींचते हुए कहा—भगवन् ! क्या दशा होती होगी अबला लक्ष्मी की ! कोई भी सहारा नहीं था। क्या हालत होगी उस विधवा 'अभागनी' की जिसको कोई भी सुधि लेने वाला नहीं था ! कर्मेन्द्र पर क्या बीतती होगी। ओह .. .. !

जब बेचारा रमेश इस तरह से चिन्ता और फ़िक्र में घुल रहा था उसे एक विशेष जेल-कर्मचारी से मालूम हुआ कि अब केवल १० दिन सजा और अवशेष है। रमेश तो बांसों उछल पड़ा। आनन्दश्रोत का तीव्रतम प्रवाह सहसा हृदय-सरणी से उद्गत हो चला। आह! सचमुच में आनन्द को घड़ियाँ अजब हाती हैं। दुःख में भी क्या खूबी है। सकट में भी क्या लग्न है। कैसी तल्लीनता की महत्ता परिलक्षित होती है। ऐसी हालत में ऐसे ऊहापोह का समावेश क्यों?

अब रमेश की उत्सुकता तीव्र से तीव्रतर होती जाती थी। वह तो मन ही मन कह रहा था कि ईश्वर! ये शेष दिन शीघ्र क्यों नहीं बीत जाते। ऐसी तो थी आतुरता! उसके मन में एक विचित्र प्रकार का उछाह था, एक उत्साह था। अन्त में वह अन्तिम दिन आ पहुँचा जिस दिन की महीनों से उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। ग्यारह मनुष्य रमेश, राम प्रताप, शंकर इत्यादि ता मुक्त कर दिए गये, बेचारे रह गये केवल दिनेश। कारण उन्हें दो वर्ष की कड़ी सज़ा मिली थी।

नियमानुसार उन सबों को मुक्त कर दिया गया। सबके सब अपने-अपने घर पहुँचे। घर वाले की उत्सुकता और विह्वलता और बढ़ रही थी। वे लोग नहीं जानते थे कि कब मुक्त किए जायेंगे। वजह कि नियत अवधि के केवल दश ही दिन उन सजा-भोगियों को मुक्ति के विषय में सूचना मिलो थी। पहले से वे लोग भी अनभिज्ञ थे। अपने-अपने परिवार को सूचित करते तो कैसे।

रमेश की जेल-मुक्ति के ठीक कुछ दिन पहले उसके पुत्र कमन्द्र कारावास से मुक्त कर दिया गया था। अब रमेश के आनन्द की सीमा नहीं रही। उसे संतोष भी था कि मुसीबत और कठिनाइयों को झेलने पर मेरा जीवन तो सफल हो गया। सफलता नहीं मिलने पर मैं न तो घर का रहता न घाट का, परन्तु अब क्या ? जिस वस्तु के लिये, जिस जायदाद और प्राणाधार के लिये मुझे दर-दर भटकना पड़ा, गली-गली खाक छाननी पड़ी, कारावास की बहार देखनी पड़ी, अदालत की राह नापनी पड़ी, अन्ततः वह मुझे प्राप्त हो गई। पुस्त-दर-पुस्त के लिये अपनी सम्पत्ति हो गई। अब उस पर अधिकार जतलाने की हिम्मत किसकी है ?

अस्तु रमेश उन जमीन्दार बाबू के पास गया जहाँ उसका पुत्र कर्मचारी था। विनम्र हो प्रणाम किया। जमींन्दार बाबू को उसने सहर्ष अनेकानेक हार्दिक धन्यवाद दिये। उसने अग्रतः कहा—बाबू ! आप धन्य हैं कि संकट काल में मुझे सहारा दिया। एतदर्थ आपका जीवन पर्यन्त कृतज्ञ और आभारी बना रहूँगा। ईश्वर करें आपको दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति हो।

हाँ, मैं एक प्रार्थना आपसे और करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि अपना अवशेष जीवन अपने उपर्युक्त मार्ग पर चलकर ही बिताऊँ। अतः धीरेन्द्र को अब नौकरी से मुक्त कर दें। कारण खेत काफ़ी हैं। उसमें परिश्रम करूँगा और सुखमय जीवन-यापन

भी होगा। रमेश फिर भी कृतज्ञता प्रगट करते हुए कहा बाबू साहेब; आपने जो समायानुकूल आर्थिक और यथोचित सहायता की है उसके लिये किन शब्दों में अपने हृदय के भावों को व्यक्त करूँ। अब कृपया आप मुझे आज्ञा दें।

ज़मीन्दार साहेब रमेश के इन हृद्गत भावों को सुन आश्चर्य में पड़ गए। रमेश के प्रति एक प्रकार की उच्च भावना का प्रादुर्भूत हुआ। एक सच्ची श्रद्धा का आविर्भाव हुआ। समदर्शिता की लहर हिलोड़ित होने लगी और अन्ततः कहा जब आपकी यही इच्छा है तो धीरेन्द्र को ले जाइए। इतना कह उन्होंने अपनी तरफ से १०० रुपए रमेश को और दिए और सहसा उनके मुख से ये शब्द निर्गत हुए कि भगवान आपके शुद्ध विचार, युक्तियुक्त उपचार, पवित्र आचार, प्रेम के संचार को दिनों दिन बढ़ावें और परिष्कृत कर दें। यही मेरी कामना है। खैर, जाइए और आवश्यकता पड़ने पर यथाशक्ति मैं आप की सहायता भी किया करूँगा। दोनों के दोनों ने प्रणाम कर घर की राह ली।

अब रमेश कृषि-कार्य में संलग्न हो गया। परन्तु अभाग्यवश अनावृष्टि का प्रकोप होने के कारण फसल मारी गई। एक दिन वह उक्त ज़मीन्दार साहब के पास आया जिन्होंने मदद करने का वचन दिया था और उनसे दशा का वर्णन किया। ज़मीन्दार महोदय ने रमेश को सलाह दी कि आबपाशी के लिए एक

मशीन खरीद लो। मैं रुपये देता हूँ। उन्होंने २००० रुपये कर्ज रमेश को देकर साथ में अपने एक मित्र इंजिनियर साहब को उसके साथ अच्छी मशीन खरीदने के लिए कलकत्ता भेज दिया।

दूसरे दिन सुबह कलकत्ते उनकी गाड़ी पहुँची और बड़ा बाजार को एक धर्मशाले में ठहर गए। भोजन-उपरान्त वे लोग इञ्जिन खरीदने के लिए चले और पाँच बजे शाम को विभिन्न प्रकार के इञ्जिन देखकर डेरे को चल दिये। रास्ते में रमेश ने पूछा— तो फिर आप मेरे लिये कौनसा इञ्जिन उपयोगी समझते हैं। इंजिनियर ने कहा कि नेशनल इञ्जिन जिसे हमने सबसे पहले देखा था वही मुझे तुम्हारे लिए उपयोगी प्रतीत होता है। अतएव दूसरे दिन हिटली और ग्रीसम लि० (Heatly & Gresham Ltd.) के ऑफिस में जाकर उन्होंने एक इञ्जिन का आर्डर दे दिया।

१० दिन में इञ्जिन पहुँच गया और एक सप्ताह के अन्दर इञ्जिन और पम्प फिट कर दिए। अब उसका काम सुचारू रूप से चलने लगा। फसल भी अच्छी होने लगी। इसके सिवा इस इञ्जिन की बदौलत दूसरे खेतों की सिंचाई कर अपनी आमदनी उसने बढ़ा ली। उसकी आर्थिक दशा धीरे-धीरे बहुत ही अच्छी हो गई। अपने अविवाहित लड़कों का विवाह भी उसने करवा दिया। मकान भी अच्छा बना लिया। धीरे-धीरे कर्ज भी चुका दिया और रमेश सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा। किसी बात की अब कमी न रही।

रमेश की कर्त्तव्य-परायणता, कर्मनिष्ठा, सहृदयता, धार्मिक चित्तवृत्ति, मानव की सच्ची मनोवृत्ति; धीरता, अध्यवसायिता, तन्मयता और सहनशीलता से पाठक पूर्णतः परिचित हैं। अस्तु इन गुणों के पुरस्कार ही का तो फलस्वरूप रमेश सदा-सर्वदा शान्त, गम्भीर और अचल रहा। उसने तो स्तुति और निन्दा के पाठ ही में उलझन, संकट और कठिनाइयों के कारण सम-भाव का दिग्दर्शन किया। किं बहुना?

पाठकवृन्द! आप लोगों ने देखा उन मानव के पुतले को जो देव सम बन गए। एक दीन-हीन नर से नारायणवत् हो गए। धीरता, वीरता और सहनशीलता से विभिन्न प्रकार की अड़चनों का सामना करना लोकापवाद और हास-उपहास का सहन करना, भिन्न-भिन्न तरह के दुःख-द्वन्द्वों की मुठभेड़ करनी, अपने कर्त्तव्य को मनोयोगतापूर्वक करना, धर्म की रक्षा आत्माहूति कर भी करनी, सत्-पथ से विचलित न होना, सर्वव्यापी, सम-कालीन, समदर्शी, अन्तर्यामी सच्चिदानन्द में एकमात्र अटल प्रेम, अटूट श्रद्धा, सच्ची उपासना, निष्काम भक्ति, एवं पूर्ण विश्वास और भरोसा रखना ही तो देव के रूप में परिणत करने वाले विशुद्ध उपकरण हैं।

रमेश सदृश्य जीवन-मरण की मोह-ममता छोड़कर 'सत्' 'धर्म' और ईश्वर-प्रेमपरायणता एवं जीवन-तप की परीक्षा-कसौटी पर जो मनुष्य कसा जाय और खरा उतरे वह लब्ध-प्रतिष्ठ और सर्वेसर्वा क्यों न हो? ऐसे पुरुषोत्तम का उत्कर्ष

सर्वथा अवश्यम्भावी है। अपकर्ष तो स्वप्रकृत्या प्रमाणित होता है। यह सर्व प्रकारेण अनुकरणीय और अनुपेक्षणीय है। "Human life is not a bed of roses" में एक तथ्य है, एक रहस्य है। अस्तु निष्कर्ष है कि "Every man is the architecture of his own fortune" प्रत्येक मनुष्य स्वयं भाग्य-निर्माता है। इसी लोकोक्ति में ही मानवता एवं देवत्व पूर्णतया सम्यक् रूपेण संवेष्ठित हैं।

॥ समाप्त ॥